ओ३म्

प्रिंस बिस्मार्क



इन्द्र

पण्डित अनन्तराम के प्रबन्ध से

सेठ रामगोपाल पं॰ अनन्तराम के सद्धर्मप्रचारक यन्त्रालय

देहली में मुद्रित।

ओ३म

आदित्यग्रन्थमाला की द्वितीय पुस्तक

प्रिंसबिस्मार्क

अथवा

जर्मनसाम्राज्य की पुनः स्थापना

लेखक—

इन्द्र वेदालङ्कार

मूल्य १॥)

ग्रन्थ-कर्ता की अन्य पुस्तकें

नैपोलियन बोनापार्ट—मूल्य १॥)

वीर रसात्मक अद्भुत जीवन चरित है

राष्ट्रों की उन्नति—मूल्य ।)

राष्ट्रीयता का मूलमन्त्र—मूल्य ≡)

कलकत्ते का प्रसिद्ध मासिक माडर्नरिव्यू इन निबन्धों के बारे में लिखता है—'..........दोनों निबन्धों का विषयप्रतिपादन अत्युत्तम है। निबन्धों के अन्दर आये हुए नये भावों और लेखशैली की सुन्दरता और स्पष्टता के कारण हम इन्हें पढ़ने की पाठकों को सलाह देते हैं।

उपनिषदों की भूमिका—मूल्य ।=)

इस में उपनिषदों के गहरे भाव सरल ढंग पर लिखे हैं। भूमिका और सार दोनों साथ हैं। पुस्तक अवश्य देखिये।

गुरुकुल-गीत—एक पुत्र की ओर से गुरुकुलमाता के चरणों में छोटी सी भक्तिभेंट है। मूल्य -) डाक व्यय कुछ नहीं।

प्रबन्धकर्ता—

सद्धर्मप्रचारक-पत्र

गुरुकुल काङ्गड़ी

हरिद्वार

प्रस्तावना

विस्मार्क का स्थापित किया हुआ साम्राज्य इस समय परीक्षा की अग्नि में तपाया जा रहा है। दूसरा विलियम जर्मनी का संजीवक सिद्ध होगा, या हत्यारा—इस प्रश्न का उत्तर तोपों और बन्दूकों के गोले गोलियों से दिया जा रहा है। कौन कह सकता है कि भविष्य के गंभीर गर्भ में क्या पल रहा है ? योरप के महाभारत का जो परिणाम होगा, प्रिंस-बिस्मार्क का कार्य उसी से परखा जाया करेगा। इस समय हम जर्मन-साम्राज्य की पुनः स्थापना की पूर्वपीठिका मात्र पाठकों के सामने रख सकते हैं। उस की उत्तर-पीठिका अभी चल रही है, समाप्त नहीं हुई। जो लोग चलती हुई उत्तर-पीठिका को समझना चाहें, उनके लिये पूर्वपीठिका का जानना अत्यावश्यक है। यह पुस्तक योरप के वर्तमान युद्ध की भूमिका मात्र है।

जब अभी इस युद्ध राक्षस का भयानक नाद काल के पेट में भी नहीं उपजा था, तब इस जीवनी का लिखा जाना प्रारम्भ हुआ था। युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व प्रायः यह सम्पूर्ण हो चुकी थी। युद्ध की घटनाओं को दृष्टि में रखते हुए मुझे पुस्तक में कोई विशेष परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। पुस्तक में प्रायः वे ही विचार हैं, जो एक इतिहास के विद्यार्थी के चित्त में युद्ध आरम्भ होने से पूर्व उत्पन्न हो सकते थे।

कई कारणों से पुस्तक छपने में बहुत विलम्ब होगया। कारण ऐसे थे, जिन का पाठकों को सुनाना व्यर्थ है। 'चिरपक्वं सुपक्वं भवति' देर में पकी हुई वस्तु अच्छी पक जाती है। यह पुस्तक भी काल के पेट में चिरकाल रह कर भली भांति पक गई होगी—यह मुझे पूरी आशा है।

तीन साल हुए, मैंने नैपोलियन बोनापार्ट की जीवनी लिख कर प्रकाशित की थी। पुस्तक में कोई विशेष गुण नहीं था। न जाने, भाषा विचार और सन्दर्भ के कितने दोष उस में भरे पड़े थे। कई दयालु समालोचकों ने उन्हें दिखा

भी दिया था। सब कुछ होते हुए भी प्रणयशील जनता ने उस पुस्तक को अपनाया—और अच्छी तरह अपनाया। आज उस की सवा दो हज़ार प्रतियों में से विक्रय के लिये एक भी शेष नहीं है। इस प्रणय-परिचय ने ही मुझे यह दूसरा यत्न करने के लिये उत्साहित किया। बिस्मार्क जैसे महापुरुष का चरित लिखने के लिये जो योग्यता और अनुभव चाहिये, उस का दशांश भी मुझ में नहीं है। तो भी अनुग्राहक जनता के प्रेम पर भरोसा करते हुए यह अधूरी खेल कर डाली है—आशा है लेखक की मन भावनायें अधखिली न रह जायंगी—उसे निराश न होना पड़ेगा।

पुस्तक में जो नाम आये हैं, उन में अधिकांश जर्मन-भाषा के हैं। मुझे जर्मनभाषा का बहुत थोड़ा ज्ञान है। उन का लेख ठीक ठीक हो सका है या नहीं, यह मैं निश्चय से नहीं कह सकता। जर्मनभाषा जानने वालों से भी मैं प्रायः नामों के उच्चारण पर सम्मति लेता रहा हूं। फिर भी जो भूलें रह गई हों, पाठक लोग क्षमा करें। यदि कोई भूल किसी सज्जन को सूझे, कृपया मुझे लिख दें, ताकि अगले संस्करण में ठीक कर दी जाय।

इन्द्र



विषय-सूचि

प्रथम भाग

दूसरा भाग

स्वाधीनता की कथा

तीसरा भाग

तय्यारी

चौथा भाग

रंगस्थली में प्रवेश

पांचवां भाग

उन्नति की ओर गति

छठा भाग

साम्राज्यस्थापना

सप्तम भाग

जीवन नाटक का अन्त



बिस्मार्क

प्रथम परिच्छेद ।

लगभग सौ वर्ष ।

सीधी साधी दृष्टि से देखें तो इतिहास एक गोरखधन्धा है । इतिहास के ऊबड़ खाबड़ जंगल में रास्ता पाना कठिन प्रतीत होता है । इतिहास की एक२ घटना इतनी नोकीली प्रतीत होती है कि उस में छिद्र करना और छिद्र में से सूत्र को निकाल लेना बड़ा असम्भव जंचता है । आज की घटनाओं को जाने दीजिये, पुराने समय से ही इतिहास की ऐसी वक्र गति दिखाई देती है । भारत-वर्षरूपी उद्यान किसी दिन हरा भरा था, वह फलों और फूलों से लदा हुआ था, किसे अनुमान था कि इतना शीघ्रही उसपर मुसलमानों का दल टिड्डियों ी तरह आ टूटेगा ; और उसके सारे गौरव को मिट्टी में मिला देगा । मेसी-नया वह देश है, जिसके राजा सिकन्दर ने किसी दिन अपने घोड़े की टाप से ों दिशायें गुंजादी थीं, किन्तु १९१३में ग्रीस की फौजें रूमियों से इस लिये लड़ ी थीं, कि वे मेसीडोनिया को उसकी दबोच में से निकाल सकें। एक ओर चीन पने घरेलू युद्ध को समाप्त करके, प्रजातन्त्र राज्य का आनन्द लूटने को तय्यार ा रहा है, और दूसरी ओर रूस और इंग्लेण्ड मिल कर फारस के प्रबन्ध को सुधारने का यत्न कर रहे हैं । चाहे भिन्न समयों में एक ही देश की, और चाहे एक समय में अनेक देशों की दशा पर दृष्टि डालिये आप सब कुछ गड़बड़ पायंगे । कालरूपी मदारी की चालें को समझना लोहे के चने चबाना है इस प्रकार साधारणतया इतिहास पर दृष्टि डालें तो वह तूफान से इतराये हुए समुद्र की भांती प्रतीत होता है । एक लहर आकाश से बातें कर रही है तो दूसरी लहर किनारे से टक्कर मार रही है । कहीं पानी का पहाड़ है, तो कहीं गहरा कुआ है । किन्तु ज़रा गहरी दृष्टि से देखिये, और सारा दृश्य ही बदल जायगा । जो लोग इस काल की निराली चालें को विवेक की गहरी नज़र से परखते हैं, वे उस के नुकीले मनकों में एक सूत्र परोया हुआ पाते हैं । उनकी दृष्टि में इतिहास एक बुझारत नहीं रहता, किन्तु संसार रूपी महा

संग्राम का क्रमबद्ध महाकाव्य हो जाता है ; एक लड़ी में सब घटनायें बन्ध जाती हैं; एक तागे में सब मनके परोये जाते हैं।

सारे पृथ्वी के इतिहासपर और पृथ्वी निवासियों के इतिहास पर सरसरी सी नज़र डालना भी एक पुस्तकालय की अपेक्षा करना है। इस कार्य को हम यहां छोड़ देते हैं। उसके लिये स्थान और समय भी बहुत चाहिये, और विद्या भी बहुत चाहिये। हां, इस अगम अगोचर और अनाद्यनन्त इतिहास की लड़ी में से एक छोटे से मनके को लेकर ऊपर कहा हुआ सिद्धान्त स्पष्टतया समझ में आ सकता है। ईस्वी सन् १७७५ से लेकर ईस्वी १८७१ तक चार वर्ष कम एक सौ वर्ष होते हैं। इस समय को हम एक शताब्दि कह दें तो अशुद्ध न होगा। यदि इस एक शताब्दि के इतिहास पर हम दृष्टि डालें, और अपनी दृष्टि को एक छोटी संकुचित घाटी में से निकाल कर दिगन्त विस्तारी आकाश का चुम्बन करने वाले हिमाद्रि शिखरों तक पहुंचादें, तो हम काल की विचित्र चालों को कुछ २ समझ सकेंगे।

१७७५ ईस्वी में अमेरिका की स्वाधीनता का युद्ध प्रारम्भ होता है। इंग्लैंड रहने वाले लोग ही कई कारणों से घर से बाहिर जाकर अमेरिकाके खाली पड़े हुये जंगलों में जाकर बसे थे। देर तक बस कर उन्होंने वहां बस्तियां बसाई। देर तक इंग्लैंड के राजा का ही अमेरिका में भी राज्य रहा। अमेरिका वासियों को धीरे २ स्वतन्त्र राज्य का अभ्यास होने लगा, उन्हें शनैः २ अपने ही भाइयों का राज्य कड़ा प्रतीत होने लगा। अपने घर के साथ जो प्रेम रूपी सोने की सुहावनी लड़ी बंध रही थी ; वह लोहे की जंजीर जंचने लगी और अमेरिका के वासियों ने अपनी स्वाधीनता के लिये लड़ना प्रारम्भ किया। युद्ध की लहरें उठने और गिरने लगीं, विजय रूपी पखेरू कभी इधर आने लगा और कभी उधर जाने लगा। अन्त को लग भग आठ साल बाहिर के और अन्दर के संग्रामों के पश्चात् अमेरिका स्वाधीन होगया। वहां से पराधीनता का धब्बा मिटगया।

अमेरिका के इस स्वाधीनता युद्ध ने विशेषतया दो परिणाम उत्पन्न किये। अमेरिका स्वाधीन होगया, और साथ ही वह एक होगया। इंगलैंड का वहां दौर

दौरा न रहा, और जो अमेरिका वासियों की भिन्न २ बस्तियां थीं, वे एक ही झण्डे के तले आगईं, एक ही नाम से कहाने लगीं, एक ही शासन से शासित होने लगीं, और सबसे बढ़कर एक राष्ट्र बनगईं। उस दिन भूगोल में प्रतिष्ठा पाने वाले अमेरिकन राष्ट्र की उत्पत्ति हुई।

अब ज़रा अपने चित्त चकोर को अमेरिका की स्वाधीन भूमि से हटा कर फ्रांस के सुहावने और उपजाऊ नगरों में पहुंचाइये। अमेरिका में स्वाधीनता और एकता का राज्य हुए ६ वर्ष नहीं गुजरे। १७८९ ईस्वी का साल समाप्त नहीं होने पाया कि फ्रांसके मैदानों में क्रान्तिरूपी अग्नि की प्रचण्ड शिखायें आकाश का चुम्बन करने लगीं। सदियों का पड़ा हुआ पुराना गन्द माल धक धक करके जलने लगा, सारे देश में कोई वस्तु न थी, जो आग से बचगई हो, छब्बीस वर्ष तक बराबर यह आग कभी किसी रूप में, और कभी किसी रूप में जलती रही। इस सारी अग्नि के अन्दरसे शब्द क्या निकलता था, वही " स्वाधीनता, समानता, भ्रातृता या मृत्यु।" जो उद्देश्य अमेरिका की अंग्रेज प्रजा को अपने इंगलैंड में रहने वाले राजा से जुदा करने के लिये प्रेरक था, वही उद्देश्य फ्रांस की ओजस्विनी प्रजा को अपने राज्य का और बड़े २ सर्दारों का वध कराने के लिये नियोजक था। यह युद्ध भी स्वाधीनता समानता और एकता के लिये था। फ्रांस की प्रजा जहां अपने ऊपर अत्याचारी राज्य का सहन न कर सकती थी वहां वे लार्ड, पादरी और साधारण प्रजा का भेद उड़ाना चाहते थे। यह कहना कुछ भी अशुद्ध न होगा कि फ्रांसकी राज्य क्रांति के और कारणों में से एक मुख्य कारण अमेरिका के स्वाधीनता युद्ध का उस पर प्रभाव भी था। देखिये, काल की चाल निराली है किन्तु उस में भी निरन्तर समानता है। किन्तु अभी यहीं तक बस नहीं।

फ्रांस के नगरों पर से अभी दृष्टि उठती नहीं कि दूर से कट कट का शब्द आने लगता है। फ्रांस के अन्दर स्वाधीनता का और एकता का युद्ध अभी समाप्त हुआ नहीं कि पहले से ही एक और सेना अपने मस्तक पर स्वाधीनता और एकता का पट्टा लगाये योरप में घूमने लगती है। एक और देश उस अमृत के चखने को मुंह फैलाने लगता है जो अमेरिका से फ्रांस ने पाया था।

वह नया देश जर्मनी है। नैपोलियन का अधःपात १८१५ में हुआ उससे चार वर्ष पूर्व १८११ में ही जर्मनी के स्टाइन (stein) हार्डेन बर्ग (Hardenberg) और शार्न हार्स्ट (Scharnhorst) नाम के सुपूतों ने अपनी मातृभूमि में स्वाधीनता और एकता का झण्डा खड़ा कर दिया था। १८११ से प्रारम्भ करके १८७१ तक जर्मनी किन अवस्थाओं में से गुज़रा, उसे कौन २ से ऊंच नीच देखने पड़े, किस २ सारथी ने उसकी बागों को थाम्हा और उसको रास्ते पर लगाया, यह हमारे पाठकों को इस पुस्तक के आदि से अन्त तक अनुशीलन से पता लगेगा। जर्मनी के राज्य की यह हलचल भी स्वाधीनता और एकता के लिये ही थी। वही सिद्धान्त था, जो यहां भी कार्य करता था।

इधर जर्मनी आस्ट्रिया और फ्रांन्स की सीमाओं पर जर्मन साम्राज्य का डंका बज रहा था, और उधर इटली के सुन्दर मैदानों में मेज़िनी गेरिबाल्डी और कैवूर, नामके होता अध्वर्यु और ऋत्वक् इटली की स्वाधीनता और एकता का महायज्ञ रच रहे थे। जर्मनी के साथ ही साथ इटली में भी स्वाधीनता और एकता के लिये, देश के सुपुत्र अपने बहु मूल्य लहू को पानी की तरह बहा रहे थे। वही उद्देश्य, वही ढंग दोनों देशों में मानों एक ही आत्मा दो शरीरों से काम कर रही थी। इटली की स्वाधीनता का यत्न नैपोलियन के इटली विजय के साथ प्रारम्भ होता है। किन्तु विशेषतया गहरा रूप वह यत्न वाटर्लू के युद्ध के पांच वर्ष बाद १८२० में पकड़ता है। १८२० से प्रारम्भ होकर १८७१ तक यह छोटासा देश भी उसी सिद्धान्त की पूर्ति के लिये यत्न करता है, जिसने न्यूयार्क, पेरिस और बार्लिन के दीवारों पर अपना प्रकाशमय पंख फैलाया था। १८७१ का एक अद्भुत साल था। उसी साल पेरिस के राजमहल में प्रशिया का राजा विलियम, सारी जर्मनी का सम्राट बनाया गया, और उसी साल सार्डीनिया की सेनाओं ने रोम में घुसकर इटली की एकता के अन्तिम शत्रु पोप का राज मुकुट पृथ्वीपर दे मारा। उसी साल दोनों देशों को अभीष्ट अमृत मिल गया, वे स्वाधीन और अपने आप में एक होगये।

इस प्रकार इस एक शताब्दि का इतिहास हमारे सामने एक विचित्र स्वाधीनता का इतिहास खोल देता है। इस शताब्दी की बड़ी २ घटनाओं को

एक ही स्वाधीनता के तागे में पुरो सकते हैं। यही शृंखला आगे भी बढ़ाई जा सकती है। ग्रीसका यूनान से स्वाधीन होना, जापान का एक बड़ा साम्राज्य बना लेना, यह भी इस शृंखला में आसकता है । किन्तु बहुत आगे जाना हमें अभीष्ट नहीं है। इस समय इस एक शताब्दि का इतिहास हमें यह दिखाने के लिये पर्याप्त है कि काल के नुकीले मनकों को भी एक धागे में पुरो कर उनकी सुन्दर माला तय्यार की जा सकती है।

इस लेखक का यह विचार है कि वह अपने स्वदेशियों और स्वभाषियों के सन्मुख इस एक शताब्दि की इन बड़ी २ चारों घटनाओं की एक माला उपस्थित करे। इन चारों घटनाओं का इतिहास स्वाधीनता का इतिहास है। लेखक इस स्वाधीनता के इतिहास को अपने पाठकों के सन्मुख रखना चाहता हैं। फ्रान्सकी राज्यक्रांति और नैपोलियन का चरित्र पाठकों की भेट हो चुके हैं। इस ग्रन्थ में जर्मन साम्राज्य का इतिहास स्वाधीनता के इतिहास के पढ़ने की इच्छा रखने वालों के सामने रक्खा जाता है। शेष दो भाग भी यथा समय अथवा यों कहिये कि यथावसर पाठकों की भेट होजांयगे। क्रम तोड़ने के लिये लेखक पाठकों से क्षमा मांगता है क्योंकि ऐसे दुःसाध्य कार्य में क्रम का रखना ज़रा कठिन कार्य है।

दूसरा परिच्छेद

कुल तथा जन्म

बिस्मार्कवंश जर्मनी में बहुत पुराना था। जर्मनीके वर्तमान शासक होहिन्‌-ज़ोलर्न जब अभी राज्य का सपना भी न देख रहे थे, यह वंश उसी समय से अपनी मातृभूमि के युद्धों में भाग लेता था। यह वंश जबसे लोगों में प्रसिद्ध हुआ, तबसे योद्धा ही रहा। बिस्मार्क वंश के प्रायः सभी बड़े २ आदमी युद्ध में मरे, अथवा अपना जीवन उन्होंने तलवार की सेवा में बिताया। अपनी ज़मीन्दारी से पेट भरना और लड़ाई लड़ना, बस ये दो ही मुख्य कार्य थे, जिसे बिस्मार्क लोग किया करते थे। चरित नायक प्रिंसबिस्मार्क का पड़दादा महान्‌ फ्रेडरिक के लड़ाकू सर्दारों में से था। कहते हैं कि वह बड़ा प्रबल लड़ाकू, बड़ा प्रबल शिकारी, औरं साथही उन्मत्त शराबी था। यह आश्चर्य की बात है, कि प्रिंस बिस्मार्क की सूरत शक्ल अपने पूर्व पुरुषाओं में से सब से ज्यादा अपने पड़दादा से ही मिलती थी। प्रिंसबिस्मार्क प्रायः कहा करता था कि जब मैं अपने पड़दादा की तस्वीर के सामने खड़ा होता हूं तो मुझे वह अपना फोटू दिखता है।

प्रिंसबिस्मार्क के पिता का पूरा नाम कार्ल विल्हल्म फ्रेड्रिकफौन्‌—बिस्मार्क था। अपने कुल क्रमानुसार यह भी पहले सेना में ही भर्ती हुआ। किन्तु बहुत शीघ्र ही सेना की रोज़ की तुरही से इसके कान थक गये। लड़ाई का काम छोड़कर उसने अपनी जमीन्दारी पर ही संतोष किया। अपने पूर्व पुरुषाओं से बिस्मार्क के पिता ने शोनहोज़न ग्रामकी ज़मीन्दारी प्राप्तकी थी। एक सन्तोषी और गहरी दृष्टि रखने वाले जर्मन वासी की तरह, वह शोनहोज़न में ही दिन बिताने लगा। उसका सुलभ जीवन शिकार खेलने, शराब पीने और अपनी खेती की देखभाल करने में ही गुज़रने लगा।

अपनी ज़मींदारी का आनन्द लूटते हुए ही उसे अपने जीवन की संगिनी मिली। फ्रोलिन मोन्किन नामकी कन्या, जिससे बिस्मार्क ने शादी की एक बड़े

विद्वान् प्रोफ़ेसर की कन्या थी। वह स्वभाव से ही चतुर और गम्भीर थी। उसके मनमें अपनी सन्तान के लिये प्रेम का स्रोत वह रहा था। विशेषतया उसकी यह प्रवल लालसा थी कि वह अपने पुत्रों को देश के वहुत ऊंचे पद पर देखे। उसके दिलकी यह सच्ची कामना थी, इसलिये भगवान ने उसकी सुन ली। कितनी मातायें हैं जिनके सुख सपने परमात्मा पूरे कर देता है। वहुत सी माताओं को तो अपने सुख के सपने दिलके दिल में ही मार देने पड़ते हैं, जिन की मनोकामना पूरी भी होजायं, उनमें से भी कितनी हैं, जो अपनी आंखों से अपने पुत्रों की वढ़ती देख सकती हैं। प्रायः वे अपने वेटे के ऊपर चढ़ते २ ही भौतिक शरीर त्याग देती हैं किन्तु प्रिंसविस्मार्क की माता इस विषय में बड़ी सौभाग्यवती थी।

विस्मार्क के पिता का विवाहित जीवन विना आंधी और पानी के न था। विवाह के एक ही वर्ष वाद सारे देश नैपोलियन के जेना विजय के समाचार से गुंजायमान होगया। प्रशिया की फ़ौज के टुकड़े २ होगये। विजेता की सेनायें सारे देश में छागईं। फ्रांस के सिपाहियों ने एक २ गांव में अपना डंका बजाया, यहां तक कि विस्मार्क के माता पिता को भी शोनहोजन छोड़कर भागना पड़ा, कहते हैं कि विस्मार्क के घर के वड़े दरवाजे पर आज तक फ्रांसीसी सिपाहियों की तलवार के निशान हैं, क्या यह सम्भव नहीं कि बालकपन में जव प्रिंसविस्मार्क की माता अंगुलि से उस काठ को दिखाकर कहती होगी कि बच्चा यह काट राक्षस नैपोलियन के सिपाहियों ने की थी, तव बच्चा नैपोलियन का नाम दोहरा कर दांत पीसता होगा और मन ही मन राक्षस से बदला लेने की ठानता होगा।

विस्मार्क के प्रायः सभी पूर्व पुरुषा गहरी धार्मिक प्रकृति के आदमी थे। नई सभ्यता के 'अस्ति नास्ति, के झगड़ों ने उनके हृदय दुर्ग के अन्दर प्रवेश न पाया था। वे लूथर के बताये हुए सिद्धान्तों के पूरे २ मानने वाले और उसके नाम पर सिर तक देने वाले थे। उन्हें अभी दार्शनिकों के नये २ 'वाद' छू तक न गये थे। साथ ही वे अपने राजा के परम भक्त थे, उसके वे क्रीतदास से थे। प्रशिया के राजा के लिये वे तन मन और धन को न्योछावर करने के लिये

हर समय तय्यार रहते थे। सब से ऊपर वे परमात्मा को मानते और पूजते थे और उसके नीचे उनकी दृष्टि में राजा था। नीतिक स्वाधीनता 'प्रजातन्त्र राज्य' और 'रिपब्लिक' आदि नये भारी २ शब्द उनके शब्दकोश में न आये थे। फ्रांस के नये नीतिक सिद्धान्तों से प्रभावित दक्षिण जर्मनी के निवासी प्रायः इन लोगों को 'बुद्धू' और 'काठ के उल्लू, कहा करते थे। हमारे पाठकों में से अधिक नये विचारों वाले भी अवश्य इस सारे कुल को इन्हीं नामों से पुकारेंगे किन्तु हम उनसे प्रार्थना करेंगे कि वे ऐसा करने से पूर्व हमारे एक प्रश्न का उत्तर दें। बुद्धू कौन है? क्या वह जो ईश्वर और अपने राजाको प्रधान मानता और उसके लिये गला कटाने को तय्यार है, या वह जो नाम तो प्रजातन्त्र और 'नीतिक स्वाधीनता' का लेता है, और समय पड़ते ही मेज़ के नीचे छुप कर कहने लगता है, कि 'हम नहीं, हम नहीं'।

अस्तु, ऐसे माता पिता थे, जिन्होंने हमारे चरित नायक ओटोएडवर्ड लियोपोल्ड फौन- बिस्मार्क को, १ अगस्त (१८१५) के दिन जन्म दिया। उस समय जर्मनी का भावी सम्राट बिलियम, जो विस्मार्क- चाणक्य के लिये चन्द्रगुप्त के समान था, अभी १८ वर्ष का बालक था और अभी पेरिस को जीतने वाली सेना के साथ घर लौट कर आया था। उधर इसी समय नैपोलियन, एल्बा द्वीप की कैद से निकल कर, फिर टयूलरीज़ में अपने राज लेखकों की नींद गंवा रहा था, और आज्ञाओं पर आज्ञाएं लिखवा कर रात दिन एक कर रहा था। उधर नैपोलियन और इधर बिलियम दोनों अपने काम में मस्त थे, परन्तु यह कोई भी न जानता था, कि एक छोटे से गांव में एक ऐसा बालक जन्म ले रहा है, जो एक के वंश को पर्वत के शिखर पर से उठाकर शिला पर ऐसे ज़ोर से दे मारेगा कि उसकी हड्डी का निशान पाना भी कठिन होगा, और दूसरे को पर्वतकी तराई से उठाकर, सारे संसार के चकित दृष्टियों से देखते हुए और जर्मनी के शत्रुओं के दांत पीसते हुए, पर्वत की उच्चतम चोटी पर बिठादेगा। यह और किसी को न ज्ञात था, हां एक भगवान इसे जानते थे, जो अत्याचारी का दलन करने और अधिकारी को अधिकार दिलाने के लिये ही इस अद्भुत खेल को खेल रहे थे।

तीसरा परिच्छेद ।

बाल्यावस्था और यौवन ।

कई ऐसे महा पुरुष होते हैं, जिनके ऊपर उनके पिता का प्रभाव ही प्रधानतया पड़ता है। उनके जीवन के बड़े २ कामों पर पिता के चरित और शिक्षण का ठप्पा लगा रहता है। इंग्लैंड का महा मन्त्री छोटा पिट इसी प्रकार का था। उसके पिता का उसके जीवन पर गहरा असर था। दूसरी ओर ऐसे महा पुरुष भी बहुत होगए हैं, जिन पर माता की गोद का असर बहुत अधिक रहता है, जिनके शरीर पर माता के दूध का असर प्रबल होता है । नैपोलियन का महान् चरित्र इसका दृष्टान्त है। उस की क्रियाओं में, उसके चरित्र के ढांचे में, पिता की छाया पाना असम्भव के समान है हां माता का प्रभाव उसकी एक २ चाल और ढाल में पाया जाता था । बिस्मार्क का जीवन इन दोनों प्रकार के प्रभावों के स्रोतों से मिलकर बना था। पिता की ओर से उस पर वंश की विशेषताओं का बड़ा भारी प्रभाव था। उसके पिता और पितामह का साहस, निडरपन, असहिष्णुता और पराक्रम इस अद्भुत मनुष्य में कूट २ कर भरे हुए थे। बालकपन से ही वह इन मनुष्यता के भूषणों से आभूषित था। डरना, पीठ दिखाना, या कांपना किसे कहते हैं, इसका उसे सपने में भी कभी ध्यान न था। नगरों से घृणा और ग्राम्यजीवन से प्रेम यह भी उसने पितृ पक्ष से ही सीखा था। उसकी माता नगर से पैदा हुई थी, किन्तु बिस्मार्क नगरों से ऐसी घृणा करता था, जैसी घृणा आज कल के बाबू लोग खुली हवा या खुले मैदानों से करते हैं। सब से बढ़कर, पिता के पक्ष ने उसके मन पर जो प्रभाव डाला था , वह प्रोटेस्टेण्ट धर्म और राज भक्ति का था। बालक और युवा बिस्मार्क भी उतना ही धर्म की आवश्यकता को मानने वाला और राज भक्त था, जितना पीछे से प्रजा प्रतिनिधि सभा में खड़ा हुआ बिस्मार्क । यह उसके पितृ पक्ष का ही संस्कार था। उसकी युद्ध की और पुराने ढर्रे की जितनी भावनाएं थीं, वे सब उसे पैतृक सम्पत्तियें प्राप्त हुई थीं। उपर्युक्त अच्छे या उदासीन गुणों के साथ २, उसे कई दुर्गुण भी वहीं से मिले थे। झट पट

लड़ने को तय्यार होजाना, शस्त्र निकाल लेना, खूब शराब पीना, दिन रात खेल कूद में गंवाना-ये अवगुण, जो विशेषतया बाल्य काल में उसके लिये हानि कारक हुए, वे भी उधर ही से आये थे।

माता से उसने वे गुण प्राप्त किये थे, जिन्हों ने उसे योद्धा के साथ २ राजनीति का अद्भुत पुतला बना दिया । क्षत्रिय के सब गुणों के साथ उसमें ब्राह्मण के भी अनेक गुण थे । वह चाहे कितना ही असहिष्णु था किन्तु क्रोध में आकर अपने आपे से बाहिर न होता था, सदा समझदार बना रहता था । उस की ऊंची २ अभिलाषायें उसका विद्या से प्रेम-ये सब माता की उमंगों के परिणाम थे । बिस्मार्क की माता उसके लिये कुन्ती थी, जो उसे कौरवों से संग्राम करने को प्रेरित करती रहती थी । पहले से उस के मन में यह धारणा थी, कि बिस्मार्क किसी ऊंचे राजकीय पद पर होगा । बालक पन में ही वह सपने में बिस्मार्क को राजा के सिंहासन के दांये ओर खड़ा देखा करती थी। राजनीतिज्ञ होने के अनुकूल गुणों का अंकुर, बिस्मार्क के मन में माता की कृपा से ही उत्पन्न हुआ था ।

बिस्मार्क ऐसे व्यक्तियों में से न था, जिसके गुण या अवगुण प्रकाशित होने के लिये काल की प्रतीक्षा करें। जो गुण या अवगुण उसके अगले जीवन में बहुत बड़े होगये थे, वे ही उसके बाल्य या युवा काल में अप्रकाशित न थे, वे अंकुर के रूप में थे, किन्तु पृथ्वी के ऊपर अवश्य निकल आये थे, वे गर्भ में ही पालित और लालित हो चुके थे। यदि वह अगले जीवन में राजकीय शक्ति का केन्द्र राजा को मानता और उसके अधिकारों की रक्षा में तन मन देने को तय्यार था, तो बाल्यावस्था में भी वह उसके लिये द्वन्द युद्ध करने को तय्यार रहता था । यदि भावी जीवन में निर्भय और स्वच्छन्द था, तो विद्यार्थी अवस्था में भी उस पर किसी का प्रभाव पड़ना असम्भव सा था । यह बिस्मार्क के जीवन की गांठें खोलने वाली एक ख़ास परख है । उसके स्वभाव का सब से बड़ा अंग यह था कि वह और किसी की सम्मति को अपनी सम्मति से ऊंचा मानने को तय्यार न होता था, वह सम्मतियों में बड़ा हठीला था । यह बात ध्यान में रख कर ही बिस्मार्क के चरित्र को पढ़ना चाहिये । यदि यह

द्यार्थी अवस्था में कभी श्रेणी में पढ़ने न बैठता था, तो इसीलिये कि वह ध्यापकों की सम्मति को अपनी सम्मति के साम्हने ऊंचा मानने को तय्यार न । अगर वह किसी नीचे की राजकीय नौकरी में न रह सका, तो इसी लिये क वह ऊंचे अधिकारियों और अफसरों को अपने से अधिक क्रिया कुशल या द्धिमान नहीं मान सकता था। सारा जमनी देश प्रजा सत्तात्मक राज्य के लिये त्न कर रहा था, स्वाधीनता के लिये मर रहा था। यदि बिस्मार्क भी उन्हीं ा कहा मान लेता, तो फिर उसकी सम्मति पर उनकी सम्मति का विजय न हो ाता।

बिस्मार्क बाल्यावस्था से ही बड़ा हठीला और आवारा किन्तु साहसी और चारशील था। जब वह अभी ६ वर्ष का था, तब वह बार्लिन नगर के एक कूल में पढ़ने भेजा गया। वहां उस ने क्या पढ़ा यह तो ज्ञात नहीं, हां इतना वश्य ज्ञात है कि वह रात दिन अपने घर के खेतों और जंगलों को याद या करता था। शहर उसे अजीब तरह के चिड़िया घर प्रतीत होते थे। कूल में वह लगभग ११ वर्ष तक पढ़ा। इस समय में उसने अंग्रेजी, फ्रांसी और टिन भाषाओं का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया। कहा जाता है कि फ्रेंच भाषा का ध्यापक सदा शिकायत किया करता था कि बिस्मार्क उसकी श्रेणीमें पढ़ने नहीं ाता, किन्तु तो भी बिस्मार्क ने अपनी फ्रेंच भाषा की योग्यता बहुत बढ़ा ली ी। यहां तक कि बड़ा होने पर जब वह फ्रांस के सम्राट् तीसरे नैपोलियन से मेला, तो उसे प्रिंस की फ्रेंच भाषा और उसके उच्चारण पर आश्चर्य हुआ। स बिस्मार्क की यही आदत थी। वह श्रेणी में बैठ कर पढ़ना कुछ हेठीसी मझता था। जब और बालक श्रेणी में बैठकर बूढ़े मास्टर का मुंह ताकते और झिड़कियों और बेतोंसे पूजित होते, तब खिलाड़ी बिस्मार्क भागता कूदता, अपने रावर वाले लड़कों से लड़ाइयां करता या लोगों के खेतों में लूट मार मचाता। किन्तु जिस समय और बालक स्कूल से निकल कर गप शप उड़ाते या ऊंघते हते, उस समय बिस्मार्क पुस्तक लेकर पढ़ता, और स्कूल की सारी न्यूनता पूरी कर लेता।

१७ वें वर्ष में विद्यालय की पढ़ाई समाप्त करके बिस्मार्क गौटिंगन (Gottingen) के विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुआ। उसके विश्व विद्यालय जीवन

की भी वही कहानी है, जो उसके विद्यालय की थी, सारा संसार देखता था, कि खिलाड़ी बिस्मार्क ख़ाक नहीं पढ़ता। निशाना लगाने अभ्यास करना, कूदना, तैरना, लड़ना और शराब पीने की आदत बढ़ाना कार्य थे, जिन में वह सारा समय बिताता था। एक बार कहते हैं कि वह भाई के कमरे में उस से मिलने गया, कमरा ख़ाली था। वहीं पर नि बाज़ी शुरू होगई। भाई की पुस्तकों की अलमारी का निशाना बनाकर बारी शुरू हुई। अड़ोस पड़ोस के विद्यार्थी भागे आये कि न जाने क्या हु जो घर के अन्दर गोलियां चलने लगीं। बिस्मार्क के लड़ाकूपन का एक छोटा दृष्टान्त देखना हो तो यह है कि कालेज के छोटे से ज़ीवन में उसने रिवाल की सहायता से २८ द्वंद युद्ध किये थे। उस का अभ्यास इतना बढ़ा था कि २८ द्वन्द युद्धों में से केवल एक में ही उस के चोट लगी, और भी शत्रु का तमंचा फट जाने से। नहीं तो सब द्वन्दों में उस के विरोधी ही रुधिर निकलता रहा। कालेज में पढ़ने जाना उसे विशेषतया बुरा होता था। उसे वह कैदख़ाना समझता था। स्वाधीन जर्मनी का वासी स्वाधीन जर्मन जाति का पुत्र बिस्मार्क कैदखाने में जाय- यह असम्भव से असम्भव था। किन्तु साथ ही जब हम परिणाम देखते हैं, तो आश्चर्य होता था। जिन विषयों में उसे प्रेम था, उनका वह पूरा २ पंडित था। इतिहा का वह प्रेमी था, उसमें उसे विचित्र कुशलता प्राप्त थी। पिछले जीवन में, रा कीय मामलों के बड़े २ विवादों में उसके विरोधियों में से इतिहास के प्रोफेसर दंग रह जाते थे, जब बिस्मार्क अपने पक्ष की पुष्टि में ऐ प्रमाणोंकी धारा बहा देता था। इतिहास के सिवाय दर्शनोंसे और तत्व ज्ञान भी उसे प्रेम था। किन्तु तत्वज्ञान में उसका वही स्वभाव स्पष्ट था। सारा जर्म उसके समय काण्ट और हीगल के विचारों पर टूटा पड़ता था। वे उस के सूर्य और चन्द्र थे, जिनकी सत्ता को एक जर्मन ही क्या, सारा योरप स्वीका करता था। विद्यार्थी और प्रोफेसर उनके सामने सिर झुकाते थे अपना यही भा समझते थे। किन्तु यदि बिस्मार्क भी उन्हीं के विचारों को स्वीकार कर लेता तो क्या उसकी निर्बलता न समझी जाती, क्या वह प्रवाह में न बह जाता। सर्व सम्मति या बहु सम्मति के पीछे चलना उसे एक समझदार आदमी के लि

ौत जंचता था। वह काण्ट का नहीं स्पिनोज़ा (Spinoza) के तत्वज्ञान को
ानने वाला बना।

१८३५ में उस ने विकालत पास की। विकालत के पीछे उसे कुछ
ान जर्मनी के राज नियमों के अनुसार सिपाही का काम भी करना पड़ा।
र्मनी के राज नियम से प्रत्येक जर्मनपुरुष को तीन साल तक अवश्य सेना
भर्ती होना पड़ता है। हां जो पुरुष विश्वविद्यालय से उपाधि ले ले उसके
ार केवल एक वर्ष का बन्धन रह जाता है। बिस्मार्क को भी एक वर्ष
निवेशों में काटना पड़ा। कुछ दिन उसे घरकी ज़मीनदारी के प्रबन्ध के लिये
ाना पड़ा। हम नहीं चाहते कि बिस्मार्क के जीवन के इस अनावश्यक भाग
विस्तार करके अपने पाठकों को थकावें। इतना कह देना पर्याप्त है कि
कई स्थानों में सरकारी नौकरी पर गया, किन्तु उसका स्वभाव उसे
ां से फिर भगा लाया। वह किसी के नीचे रहना कैसे स्वीकार कर सकता था।
तो बनाया ही ऊपर रहने के लिये गया था वह नीचे कैसे रहता। दैव ने
ा ही उसे इस लिये किया था कि उस का हाथ देशों के छत्रपतियों के भी
र रहे, वह कइयों को राजसिंहासनों पर से उतारे, और कइयों को राजा से
म्राट् बनावे। वह राजा के छोटे २ कर्मचारियों के नीचे कैसे रहता। उस
नौकरियां कैसे छूटती थीं, इस का भी एक दृष्टान्त रक्षित है। एक बार वह
छ दिन की छुट्टी लेने को अपने अफ़सर के पास गया। अफ़सर भी जर्मन
, वह अपने से छोटे की बात जल्दी क्यों सुनने लगा। बिस्मार्क बाहिर बैठा
ा। देर होती देखकर कुछ गाने लगा। अफ़सर ने थोड़ी देर में बड़े गौरव से
कर पूछा कि 'क्या चाहते हो'। बिस्मार्क ने उत्तर दिया कि 'आया तो मैं
ट्टी लेने था किन्तु अब मैंने विचारा है कि अस्तीफा ही दे दूं।' अफसर भी
बस्मार्क से जला भुना बैठा था। चलो दोनों की सम्मति एक होगई, और
बस्मार्क ने काम से छुटकारा पाया।

हम उन सब छोटी बड़ी नौकरियों के जंजाल में न पड़ेंगे जिन में से
बस्मार्क को गुज़रना पड़ा। बात असल में यह थी कि उसका स्वभाव, उसकी
प्रसिद्धि, उसे किसी ऊंचे पद पर पहुंचने से भी रोकती थी। और नीचे पद
र भी न टिकने देती थी। वह अनुभव करता था कि उसके अन्दर वे शक्तियां

हैं, जिनसे वह दुनियां के तख्ते पलट सकता है और देशों के भाग्य निश्चय कर सकता है, किन्तु उन शक्तियों के दिखाने का, अवसर कहां था। तब वह दीवारें गिराने वाली ही बात करता था। जब आदमी कोई बड़ा कार्य करसके, किसी आपत्ति ग्रस्त को बचाने की शक्ति अपने अन्दर पाता हो, किन्तु किसी विशे कारण से वह रुका रहे, तब वह पैर पटकता है, और लोकोक्ति के अनुसा दीवारें गिराता है। इसी तरह बिस्मार्क, बंधे हुए शेर की तरह खिझ कर समय बिताने को शिकार खेलता था, लड़ता था, झगड़ता था और मद्य पीकर अपन समय बिताता था। उसकी ये आदतें यहांतक बढ़ गई थीं कि लोग उसे 'पागल बिस्मार्क' के नाम से पुकारने लग गये थे।

अब हम बिस्मार्क को इन सब खेलों और तमाशों में छोड़ कर उस समय पर पहुंचते हैं जब चौथे फ्रेडरिक विलियम ने बड़ी राजकीय शान के साथ यह आज्ञा देने की कृपा की कि बर्लिन में प्रजा के प्रतिनिधियोंकी एक सभा बुलाई जाय, जिसमें राज्य की ८ भिन्न २ प्रतिनिधि सभाओं के लोग आवें। पहली प्रतिनिधि सभा १८४७ में बर्लिन में बुलाई गई। हरफौन बिस्मार्क, उस सभा में एक और प्रतिनिधि की जगह सभासद् के रूप में गया, क्योंकि वह प्रतिनिधि ऐन समय पर बीमार पड़गया था। देखिये भाग्यों का फेर। वह मनुष्य जो किसी दिन न केवल राजकीय सभा का मुखिया बना, बल्कि राजकीय सभाओं का बनाने और बिगाड़ने वाला था, वह पहले पहल प्रतिनिधि सभा में अपने आप नहीं, किन्तु एक और सभासद् की जगह जाता है।

जिस समय बिस्मार्क पहले पहल सभा में गया वह देखने योग्य जवान था। कुछ तो स्वभाव से ही वह पहलवानी शरीर का था, फिर उसकी खेल कूद की आदतों ने उसकी शारीरिक दशा को, और भी बढ़ा दिया था। वह उस समय खिलती जवानी में था। ३२ वर्ष की अवस्था में वह असाधारण ऊंचाई का हृष्ट पुष्ट युवा दिखाई देता था। उसकी भरी हुई जाज्वल्यमान शक्ति, तीखी और विचारशील आंखें उसके गौरव को और भी बढ़ा देती थीं।

इस समय उसकी मानसिक तय्यारी भी कुछ कम न थी। उस विद्या के साथ २ जो उसने विद्यार्थी अवस्था में, परीक्षा में पास करने के लिये प्राप्त की

थी, उसका निजू अनुशीलन था। जिसमें इतिहास का भाग अधिक था इसके अतिरिक्त उसे संसार का अनुभव भी बहुत प्राप्त होगया था। इंगलैन्ड फ्रांस आदि बढ़े हुए देशों में घूम आया था। स्वीज़रलैंन्ड आदि छोटे २ देश भी छूटे न थे। उस पर इतने वर्षों की नौकरी का अनुभव। सारांश यह कि प्रतिनिधि सभा (Parliament) में आने के समय बिस्मार्क शरीर और मन की चढ़ती जवानी में था।

द्वितीय भाग ।

स्वाधीनता की कथा ।

प्रथम परिच्छेद ।

सिंहावलोकन ।

आज जिस जर्मनी का नाम सुनकर बलवान् देश भी थर थर कांपते हैं, वह दोसौ वर्ष पूर्व क्या था, इस की कल्पना करना कठिन है । जर्मनी का समूाट् आज योरप की सबसे अधिक शक्ति वाली जाति का स्वामी है, उसके पूर्वज एक छोटे से दूसरे या तीसरे दर्जे का बल रखने वाले प्रशिया देश के ठाकुर थे । योरप के दैत्यसमान प्रवल देशों के साम्हने वह देश वामन की हैसीयत भी न रखता था । सभाओं में उसका आदर न था, युद्धों में उसकी गिनती न थी, और देशसूचि में उसका नाम मध्य में भी न आता था ।

संसार में प्रायः एक ही नाम वंश को उज्वल किया करता है । एकही चंद्र रात का मुख चमका देता है । क्या सारे यदुवंश को हम महायोगी कृष्णवंश के नाम से ही नहीं जानते ? १७१२ ईस्वी में, इसी अकिञ्चन देश के राजवंश में एक बालक ने जन्म लिया, जिसका नाम फ्रेडरिक रक्खा गया । कीचड़ से पद्म का और मिट्टी से मोतियों का निकलना कौन नहीं जानता । यह नया बालक मणि भी कीचड़ और मिट्टी में से ही पैदा हुआ था । इसका पिता मनुष्यजाति के उन नमूनों में से एक था, जिन्हें इतिहास केवल उनके अमानुषिक व्यवहारों के कारण स्मरण रखता है । वह क्रोधी, हठी, अत्याचारी, नीचवृत्ति और मुट्ठी-बंद था । दया का रस उसके हृदयपुष्प में नाम को न था, सन्तान प्रेम के कोमल तेल ने उसकी मशीन के कठोर पुर्ज़ों को कोमल न किया था । लोगों को सुख देना, उनके तन और धन को सुरक्षित करना, राजा का कर्तव्य है । राजा को इतना बड़ा बनके लोगों की स्वाधीनता पर दबाव डालने के लिये एक यही बहाना है । इस बालक के पिता को इस कर्तव्य का कहीं पास तक न था ।

बालक फ्रेडरिक का बाल्यजीवन इसी मनुष्यराक्षस की देख भाल में व्यतीत हुआ । बालक और पिता के स्वभावों और रुचियों में वह सम्बन्ध था, जो अग्नि

और जल में, सोने और पत्थर में, तथा हरे घास और सूखे तिनके में होता है। बालक बड़ा हुआ, और उस की मानसिक शक्तियों का विकास प्रारम्भ हुआ। पिता ने अपने से भिन्न रुचि वाले कवि, दार्शनिक और बुद्धिमान् पुत्र पर जो २ अत्याचार किये उनके वर्णन का यह स्थान नहीं है। हां यहाँ इतना लिख देना आवश्यक है कि पुत्र प[र] अत्याचारों और अमानुषिक कठोरताओं का बड़ा अच्छा परिणाम हुआ। तपाने से सोना बिगड़ता नहीं, सुधरता है। इसी प्रकार पिता के अत्याचारों ने फ्रेडरिक को सहनशील और धैर्य का पुतला बना दिया।

२८ वर्ष की अवस्था में फ्रेडरिक राजगद्दी पर बैठा। बड़ी आशाओं के साथ जयकारा करते हुए देशवासियों ने नये राजा का राजतिलक किया। यह राजतिलक क्या था, प्रशिया के भाग्यचन्द्रमा का उदय था। इस कवि औ[र] दार्शनिक राजा ने राजगद्दी पर बैठते ही कविता और तत्वज्ञान को राजनीति में पलट दिया। जो कार्य इस संसार में प्रायः असम्भव समझा जाता है, जिसका वर्णन कवियों के उद्गारों में और दार्शनिक-नीतिक ग्रन्थों में पाया जाता है, वही इस कविराजा ने कर दिखाया। 'सात वर्ष का युद्ध' योरप के इतिहास की प्रसिद्ध घटना है। एक छोटे से देश के इस स्वामी ने बराबर सात वर्ष [तक] सारे योरप के साथ संग्राम किया। वह इस समय के अन्दर कई वार जीता [और] कई वार हारा, कई वार उसने दूसरे देशों की राजधानियों के पास झंडा [गाड़ा] और कई वार उसकी राजधानी में भी शत्रुओं के जयकारे के शब्द हुए, किन्तु व[ह] नरसिंह था, जिसने राणा प्रताप की न्याईं भूख और प्यास के कष्टों को परिहास मात्र समझते हुए धर्म न छोड़ा। वह बराबर लड़ता गया, और इस [प्र]तिज्ञा से लड़ता गया कि या तो प्रशिया का नाम पहले दर्जे के राष्ट्रों में लिखादूंगा, और या केसरिया वाना पहिने हाथ में तलवार लिये हुए 'मेरादेश' 'मे[रा दे]श' कहता हुआ रणभूमि में प्राण देदूंगा। वीरता और धर्म ने मानुषिक शक्तियों [पर] विजय पाया, और सात वर्ष के पीछे विजेता महान् फ्रेडरिक (Frederick T[he] Great) प्रशिया के प्रतिष्ठित आसन पर फिर से विराजमान हुआ। महान् फ्रेडरिक [ने] प्रशियाको वनादिया, उसने उसे खाईमें से उठाकर हाथीकी पीठपर बिठा दिया।

महान् फ्रेडरिक के पीछे उसका पुत्र दूसरा फ्रेडरिक राजगद्दी पर बैठा। कह[ते] हैं कि प्रकृति अपने परिश्रम का बदला अवश्य ले लेती है। पिता के बनाने में उ[स]

ने जो परिश्रम किया था, उसकी कसर पुत्र में निकाल ली । महान् फ्रेडरिक के खड़े किये हुए राज्यप्रासाद की रक्षा करने की शक्ति इस नये फ्रेडरिक की निर्बल बाहुओं में न थी । उस के अन्दर उतनी कठोरता नहीं थी कि वह शत्रुओं को प्रशिया पर धावा करने से रोक सकता, और उसके अन्दर इतनी नर्मी भी नहीं थी कि उस की प्रजा उसे प्यार करने लगती। अनुचित नर्मी और अनुचित कठोरता का वह एक पिण्ड था । उस के समय में प्रशियन राज्य ने यद्यपि भूमि नहीं खोई, किन्तु प्रतिष्ठा और मान का बहुत सा भाग गंवा दिया ।

अगला नरेश तीसरे फ्रेडरिक के नाम से विख्यात हुआ। अपने पिता के कई एक गहरे दोषों से वह रहित था, किन्तु 'प्रकृतिर्दुस्त्यजा नृणाम्' मनुष्य माता पिता के संस्कारों का पुतला है । कार्य में आलस्य, अनिश्चयात्मकता, और काम करने की अशक्ति से इसकी कार्यनीति भी वैसी ही ढीली थी, जैसी नीति दूसरे फ्रेडरिक के समय प्रशिया के गौरव में धक्का लगा चुकी थी। इधर तो ऐसी निर्बलता, और उधर प्रकृति के इन बिगड़े हुए पुत्रों को यह निश्चय था कि प्रशिया के राजा के ऊपर केवल एक परमेश्वर है, उसी ने हमें राज्य दिया है, हम उसी के प्रतिनिधि हैं। निर्बल शरीर वाले मनुष्य के दिमाग़ में हवा भर जाने का परिणाम सदा उसी के लिये घातक होता है । यदि कोई राजा शक्ति कुछ भी न रखता हो, और अपने कल्पनापंख परमात्मा के पास २ फटकारे, तो फिर घातक परिणाम में सन्देह ही क्या हो सकता है । इस राजा के समय में महान् फ्रेडरिक का गहरे पसीने से कमाया वैभव सर्वथा लुट जाता, यदि फ्रांस से उठी हुई आंधी स्वभाव से चलते हुए घटनाचक्र को बिल्कुल उलट पुलट न कर देती ।

जिस समय इधर तीसरा फ्रेडरिक 'मैं ईश्वर का प्रतिनिधि हूं' 'मैं ईश्वरका दूत हूं' की महारनी पढ़ कर लोगों का उपहासपात्र बन रहा था, उसी समय उसके थोड़ी दूर पेरिस के सुहावने महलों में मूर्तिभञ्जक नैपोलियन योरप विजय के मान चित्र तय्यार कर रहा था। नैपोलियन मूर्तिभञ्जक था, क्योंकि अपने आप को परमात्मा की प्रतिमा कहने वाले सब छलधारियों के दैवी अधिकारों का तोड़ना ही उसके विजयों का फल था। वह वंशपरम्परा के सिंहासनाधिकारियों का शरीरधारी अपवाद था । वह आंधी की न्याईं उठा, और सारे योरप के आकाशमंडल में फैल गया । दिशायें क्षण भर में भयावनी दीखने लगीं, छत्र

पतियों के राज्यच्छत्र डोलने लगे, राजसिंहासनों की कुर्सियां जड़मूल से हिलने लगीं। लगभग २० वर्ष तक हर एक नरपति के कानों में नैपोलियन की भयानक तोप का हृदयवेधी नाद सुनाई देता रहा। इस बीच में जो कुछ हुआ, उसके यहां वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। नैपोलियन ने जिन जिन देशों से युद्ध का बड़ा कठोर कर उगाहा था, प्रशिया का नाम उन सब में से पहला था। तीसरे फ्रेडरिक की जो दुर्दशा थी, वैसी नैपोलियन की ड्योढ़ी में, शायद ही और किसी राजा की हुई होगी। नैपोलियन तो प्रशिया को योरप की पहले दर्जे की शक्तियों में भी मानने को तय्यार न था। प्रशिया का राजा उसकी सन्धि सभाओं में बैठने के लिये प्रार्थना करता था, तो उसे कोरा उत्तर मिलता था। योरप के शक्तिमण्डल में वह एक प्रकार से अपाहज समझा गया था।

कटी हुई जड़ों वाले वृक्ष देर तक खड़े नहीं रह सकते, और रेत पर बने हुए भवन अवश्य गिर पड़ते हैं। जिस भवन की बुनियाद की ईंटें उखाड़ २ कर दीवारों मे चुनदी जांय, उसका तो फिर कहना ही क्या है? वह क्षण भर भी स्थिर नहीं रह सकता। नैपोलियन के साम्राज्य की बुनियाद फ्रांस की जनता थी, जब उसने उसमें से कृषीकारों और मजदूरों को पकड़ कर सेनाओं में भर्ती करना शुरू किया, और सेनाओं को रूस, स्पेन, हालेण्ड, जर्मनी और आस्ट्रिया में फैलाना प्रारम्भ कर दिया, तो फिर साम्राज्यभवन के ठहरने की क्या आशा हो सकती थी। अपने पूरे यौवन के समय भी नैपोलियन का विस्तृत साम्राज्य इस अन्दर की निर्बलता से डगमगा रहा था। गिरने के सारे साधन पहले से ही तय्यार थे, इतने में जर्मनी में एक नये भाव का संचार होगया, वहां एक नई जीवनगति अन्दर अन्दर दौरा लगाने लगी। कटी हुई जड़ों वाले वृक्षको गिराने के लिये जैसे उमड़ा हुआ गंगा प्रवाह चला आता है, इसी प्रकार नैपोलियन-साम्राज्य का अन्तिम संस्कार करने के लिये, जर्मन-राष्ट्रीयता का महानद लहरें मारने लगा। वह प्रशिया, जिसे नैपोलियन एक सड़ा हुआ पुराना तालाब समझता था, गंगोत्तरी बन गया। उसमें से निकली हुई राष्ट्रीयता की पवित्र गंगा नैपोलियन के साम्राज्यवृक्ष की जड़ों में बड़े बल से टक्कर मारने लगी। इंगलैंड और आस्ट्रिया के सैन्य स्रोतों ने भी उस प्रवाह की सहायता की। प्रशिया और हालेण्ड की सीमाओंमें से होता हुआ वह स्रोत फ्रांस में पहुंचा, और उस अभागे

देश के नगरों और ग्रामोंमें त्रास फैलाता हुआ ट्यूलरीज़ की दीवारों से किलोलें करने लगा।

नैपोलियन को राज महलों में से उठा कर चुटीले सेण्टहेलीना में पहुंचाने वाला कौन था ? भिन्न २ इतिहासकार इस प्रश्न का उत्तर भिन्न २ रूप में देते हैं। एक अंग्रेज़ से पूछिये तो आपको उत्तर मिलेगा कि ड्यूक आव वेलिंग्टन की वीरता और अंग्रेज़ी सेना की दृढ़ता ने ही नैपोलियन के साम्राज्यमन्दिर का ध्वंस किया। देशभक्त और जातिप्रेमी अंग्रेज़ के मुंह में यह वाक्य सज भी जाता है। किन्तु किसी निष्पक्षपात इतिहासलेखक के लिये इस कल्पना को पूर्णतया स्वीकार करना असम्भव से भी बढ़ कर है। स्वभावतः चित्त में प्रश्न उठता है कि नैपोलियन तो पहले दिन से ही इंग्लैण्ड को ललकारता रहा। टउलन में उसने ब्रिटिश जहाज़ों के दांत खट्टे किये, माल्टाद्वीप को जीत कर उसने ब्रिटिश गौरव को धक्का लगाया, उपपत्नी के आनन्द में मग्न नेलसन को समुद्र में अंगूठा दिखा कर उसने समुद्रपति का मान मर्दन किया, मिसर में जाकर फिर उस नरसिंह ने भारत के शासकों की छाती पर मूंग दलने की भूमिका बांधी, बोलोन में सेनायें एकत्र करके उसने सीधी इंग्लैण्डको आंखें दिखाईं। वीस वर्ष तक वैलिंग्टन के भाई वन्द किधर थे ? वीस वर्ष तक अंग्रेज़ी फौजकी प्रसिद्ध दृढ़ता किधर सैर कररही थी ? जिस मनुष्यने वैलिंग्टन का सारा चरित्र पढ़ा है, वह जानताहै, कि यह उस के सौभाग्य की ही महिमा थी, कि वह भारत में तथा फ्रांस में विजयी हुआ। भारत की वात हम न कहेंगे, किन्तु वाटर्लू में उसकी जीत दैव से हुई। नैपोलियन की आठ नौ प्रसिद्ध जीतों में से कोई एक, यदि वाटर्लू में वैलिंग्टन की जीतके सामने रक्खीजाय तो पता लगेगा कि वह विजय शब्द के योग्य भी नहीं है। यदि जर्मन सेनापति ब्लूचर ठीक समय पर न आता तो लोह-योद्धा वैलिंग्टन का सारा लोहा पिघल जाता। अंग्रेज़ी फौजकी दृढ़ता से किसी को इन्कार नहीं हो सकता, किन्तु नैपोलियन के सूरमों के साम्हने वह ऐसी थी, जैसे जीते जागते मनुष्यशरीर के साम्हने एक लोहे की मनुष्यमूर्ति रखदी जाय। वह लोह-मूर्ति पक्की होगी, किन्तु उस में चतुरता, बुद्धि और समझ कहां से आयगी ? किन्तु इस प्रश्न पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। नैपोलियन को गिराने का मुख्य कारण ब्रिटिश सेनापति की वीरता या ब्रिटिश सेना की दृढ़ता थी,

यह सिद्धान्त सिवा एक अंग्रेज़ के और किसी के मुंह से नहीं निकल सकता और उसे हम इस प्रकार की बात क्षमा कर सकते हैं

तब नैपोलियन को किसने हराया ? नैपोलियन के अध:पात के सब कारणों के विषय में हम उसी के जीवनचरित्र में विस्तारपूर्वक लिख आये हैं। यहां हम उनमें से एक मुख्य कारण के विषय में कुछ कहना चाहते हैं। वह मुख्य कारण जर्मनी में राष्ट्रीयता की जागृति थी। वह कैसे उत्पन्न हुई, और उसके क्या परिणाम हुए यह अगले परिच्छेद में देखिये ।



दूसरा परिच्छेद।

राष्ट्रीय भाव का स्रोत।

हे स्वाधीनता देवी ! तेरी चाल निराली है। कोई नहीं कह सकता, तू कहां से आती है, कैसे उत्पन्न होती है ? जब तेरे दृश्य का समय आता है, दिशाओं में अरुणाई आजाती है, अंधेरा दूर होने लगता है, पक्षी गण घोंसलों में से चोंचें निकाल कर चहचहाने लगते हैं। अकाल में समा बंध जाता है, पर कोई नहीं जानता कि तू किस दिशा से आजायगी, तेरा जीवनदायी मुखड़ा किस कोने में पहले दिखाई देगा। हरएक जानता है कि तू आयगी, परन्तु कहां से आयगी, कब आयगी, यह अविदित ही रहता है। क्या तेरी चाल निराली नहीं है ?

सूखे हुए जंगल में आग लगाने के लिये एक अंगारा पर्याप्त है। वह अंगारा कहां से आय, इसकी परवा नहीं। कोई नटखट दियासलाई लगादे, या एक राही भूल से चूल्हे में आग छोड़ जाय। वहां अंगारा चाहिये, वह कैसे उत्पन्न हो, यह कौन पूछता है ? जब किसी देश में ऐ देवी ! तेरा शुभागमन होरहा हो, जब तू उसके सब दोषों और पापों को जलाकर राख करदेने को तय्यार हो, तब अंगारे का उत्पत्तिस्थान नहीं पूछा जाता। वह वायु, जो अग्नि को शान्त भी कर सक्ता है, वृक्षों में रगड़ उत्पन्न करके जंगल को जला देता है। कठोर सोने को पिघला कर सुन्दर आभूषण बनाने वाली देवी! तेरे ही शत्रु ऐसे समय में तेरे सहायक होजाते हैं। जो तुझे बुझाने की इच्छा रखते हैं, वेही तेरे बढ़ाने के कारण होजाते हैं। तभी तो तेरी चाल निराली कही जाती है।

नैपोलियन बोनापार्ट का सारा जीवन दो भागों में बांटा जासकता है। उसका पहला भाग उमड़े हुए समुद्र की लहरों पर अठखेलियां लेने वाले फ्रांस रूपी जहाज़ को सीधे रास्ते पर लगाने में व्यतीत हुआ, और दूसरा भाग अन्य देशों की भूमि को मुहरे बनाकर शतरंज खेलने में और

योरप में जनमी हुई स्वाधीनता रूपी आग को बुझाने के व्यर्थ परिश्रम में खर्च हुआ। पहला भाग छोटा, और दूसरा भाग लम्बा था। दूसरे भाग में नैपोलियन ने जातियों की स्वाधीनता का नाश करने का यत्न किया। विजय पर विजय करता हुआ, और एक जाति के पीछे दूसरी जाति को पैरों के नीचे कुचलता हुआ वह १२ या १३ वर्ष तक अनर्थ मचाता रहा। किन्तु उसका परिणाम क्या हुआ? क्या नैपोलियन जैसे दिग्विजयी योद्धा के पूरे परिश्रम से जातियों की स्वाधीनता दब सकी? इतिहास के पृष्ठ खोल कर देखिये, तो आपको ज्ञात होगा कि वह आंधी, जो आग बुझाना चाहती थी, उसके अधिक फैलने में कारण हुई। योरप की जातियों की वर्तमान स्वतन्त्ररचना में सब से बड़ा कारण इसी आंधी का आगमन था। आस्ट्रिया के अत्याचारी पंजे में से जर्मनी निकला, और एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया, इटली ने भी प्रिंस मेटर्निच की भावी आशाओं को तोड़कर स्वाधीनता देवी की छत्रच्छाया का आश्रय लिया। स्पेन ने अपने नपुंसक नरपतियों को प्रजातन्त्र शासन देने के लिये बाधित किया। यह सब किस का प्रताप था? इतिहास का सन्देहरहित निश्चय है कि यदि नैपोलियन न होता, तो इन राष्ट्रों की रचना असम्भव थी। जो रस उस समय राष्ट्रों के जीवन के लिये विष प्रतीत होता था, वही वस्तुतः अमृत सिद्ध हुआ।

राष्ट्रीय भाव किस का नाम है? एक जाति में स्वतन्त्रता की लहर उत्पन्न होती है। स्वतन्त्रता के शत्रुओं की बहुतायत से जाति की इच्छा में बाधा उत्पन्न होती है। तब जाति के लोग सोचते हैं कि शत्रुओं का साम्हना करने के लिये एक होना, सब व्यक्तियों का एकही सूत्र में परोये जाना आवश्यक है। स्वाधीनता के भाव का और फिर एकता के भाव का उत्पन्न होना ही, मिलकर राष्ट्रीयता के नाम से पुकारा जाता है। जर्मनी में इस राष्ट्रीयता के भाव के उदय में प्रधान कारण नैपोलियन था।

नैपोलियन के विजयों से पूर्व जर्मनी एक नाम मात्र था। प्रशिया को छोड़ कर और बीसियों छोटे २ राज्य थे, जिन्हें यदि ज़मीन्दारी कहा जाय, तो अशुद्ध न होगा। प्रशिया की उस समय क्या दशा थी, यह हम ऊपर कह आये

हैं। तीसरा फ्रेडरिक उस समय अपने दादा के एकत्र किये हुये रत्नों को दोनों हाथों लुटा रहा था। उसके सिवाय शेष सब छोटे २ राज्य आस्ट्रिया के सम्राट् के प्रभाव में थे। वे एक प्रकार आस्ट्रियन साम्राज्य के ही भाग माने जाते थे। कई कुछ २ स्वाधीन भी थे, पर वे इतनी थोड़ी शक्ति वाले थे, कि उनकी स्वाधीनता नाम मात्र की थी। ऐसी अवस्था थी, जब नैपोलियन ने विजययात्रा प्रारम्भ की। उस विजययात्रा से क्या हुआ ? आस्ट्रिया की सत्ता जड़ मूल से हिल गई। वे जर्मनी के छोटे देश जो उसके प्रभाव में थे, जुदा करा दिये गये, नैपोलियन की तोपें आस्ट्रिया की राजधानी वीना में भी गर्जीं, और उनसे उसका रहा सहा भाव भी जाता रहा। फल यह हुआ कि जर्मनी के छोटे २ राज्य आस्ट्रिया के प्रभाव से निकल कर स्वतन्त्र होने लगे। यह जर्मन राष्ट्रीयता की पहली सीढ़ी थी।

किन्तु अभी जर्मनी के छोटे राज्यों में निर्बलता बहुत थी। उन में एकता न थी। एकता के विना स्वाधीनता ऐसे ही है, जैसे तीर के विना धनुष् और गोली के विना बन्दूक। इस एकता के भाव को लाने वाला भी नैपोलियन ही था। उसने कई छोटे २ राज्यों को मिला कर एक कान्फडरेशन आव र्हाइन (Confederation of Rhine) बनाया, जिस के ऊपर अपना प्रभाव स्थापित करने की आशा की। नैपोलियन का विचार था कि वह इस ढंग से जर्मनी की प्रशिया आदि और बड़ी शक्तियों के साम्हने एक अपनी जर्मन शक्ति स्थापित करलेगा। परन्तु उसने यह विचार कभी न किया था कि यही एकताशक्ति कभी उसके लिये भी घातिका हो सकती है। हुआ भी ऐसा ही। जबतक उन मिले हुए राजाओं को नैपोलियन का बहुत डर रहा, ख़ैर रही, पर जहां नैपोलियन का मुंह दूसरी ओर फिरा कि जर्मनी एक होगया। नैपोलियन का बनाया हुआ जत्था ही उसके नाश का मुख्य कारण हुआ। परस्पर टूटे हुए एक जाति के अवयवों को जोड़ने वाला वही हुआ, जो उसको तोड़ फोड़कर शासित करना चाहता था। अन्दर २ धधकती हुई आग को सुलगा देने के लिये वायुका झोंका आना चाहिये। आस्ट्रिया के मान को तोड़कर स्वाधीनता देनेवाला, और र्हाइन के कान्फडरेशन द्वारा एकता का बीज बोने वाला नपोलियन वायु का झोंका देने वाला भी हुआ। नैपोलियन की कठोरता, और अत्याचार ही वह झों

था। जर्मन लोग स्वभाव से ही स्वाधीनताप्रिय होते हैं। अपने जंगली किन्तु विजयी पूर्व पुरुषाओं से उन्होंने स्वाधीनता का भाव मौरूसी अधिकार के साथ प्राप्त किया है। वे किसी की बेड़ी को सहन नहीं कर सके। ज्यों २ नैपोलियन उन्हें दबाता गया, त्यों २ उठने का जोश उनके चित्त में घर करता गया। जब प्रशियन लोग सुनते कि नैपोलियन ने उनके राजा का अपमान किया, उसके साथ सीधी तरह बात तक नहीं की, तो उनका खून उबल आता। जब तक विजेता का झंडा लहराता रहा, राष्ट्रीय जोश दबा रहा, उसपर लोहे की रोकें लगी रहीं। किन्तु मास्को की आग ने उन सब रोकों को पिघला दिया, और अन्दर२ धधकती हुई आग प्रचण्ड ज्वालाओं के साथ भभक उठी, उस आग की सब से प्रचंड ज्वालायें 'भूतों के युद्ध' में, और 'वाटर्लू के संहार' में दिखलाई दीं।

वाटर्लू का युद्ध होगया। विजयी नैपोलियन को उसी की तय्यार की हुई तलवार ने काटदिया। वह अपनी घोली हुई ज़हर से स्वयं मारा गया। स्टाइन जो उस समय प्रशिया का उत्साही और दूरदर्शी मन्त्री था, केवल निमित्त मात्र था। ब्लूचर, जो वाटर्लू के युद्ध में प्रशियन सेना का अगुआ था, विधि के हाथ में केवल हथौड़ा था। स्वाधीनता और एकता ही मिलीहुई, राष्ट्रीयता के नाम से पुकारी जाती हैं। उसी राष्ट्रीयता ने बीस वर्ष के यत्न से बनायी हुई साम्राज्य लंका को आनकी आन में भस्म समान करदिया।

युद्ध होजाने पर, और नैपोलियन के सेन्ट हेलीना में क़ैद होजाने पर विजयी नरेश जीत का बंटवारा करने बैठे। आस्ट्रिया की राजधानी वीना में, योरप के सब छत्रपतियों के प्रतिनिधि, नैपोलियन के किये को अनकिया करने के लिये इकट्ठे हुए। प्रशिया को इस सम्मेलन से बड़ी आशा थी। नैपोलियन का कड़ा हाथ सबसे अधिक कड़ेपन के साथ इसी अभागे देश पर पड़ा था, नैपोलियन के गिराने में सबसे अधिक यत्न महान् फ्रेडरिक के विजयों से प्रतिष्ठा पाई हुई प्रशियन सेनाओं का था। तब क्या प्रशियावासियों की यह आशा अनुचित थी? तब क्या तीसरे फ्रेडरिक को बड़े उत्सुक चित्त के साथ सम्मेलन में न जाना चाहिये था?

किन्तु वीना का राजसम्मेलन प्रशिया वालों के लिये सर्दियों के बादल के समान हुआ। सर्दियों में बादल दीखता है, किन्तु बरसता नहीं। इस सम्मेलन ने

प्रशिया को विशेषतया और जर्मनी को साधारणतया यह विश्वास दिला दिया कि संसार में जिनके पास शक्ति है, वे सत्य की परवा नहीं करते। क्या नेपोलियन और क्या रूस का अलेगज़ेण्डर, क्या फ्रांस के राजप्रतिनिधि और क्या न्याया-भिमानी इंग्लैंड के दूत, सबके सब एक ही धर्मशास्त्र के मानने वाले हैं। वह धर्म-शास्त्र क्या है ? शत्रु का नाश करने के लिये जो साधन काम में आसकें, लाओ। गले में ढोल डालकर न्याय की बांग लगाओ, और सफ़ेद चादर पर सत्यके अक्षर चिपकाये फिरो। फिर जहां शत्रु मार लिया, वहां ढोल और झंडे का काम नहीं। 'शक्ति ही सत्य है' का सिद्धांत, विजयी के लिये, योरपियन नीति शास्त्र में सब से अधिक मान योग्य कहा है। 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं' जो सूरमा है, उसे योगवासिष्ठ पढ़ाने कौन जासकता है ? यह सिद्धांत है, जिसे पश्चिम की जातियां प्रामाणिक मानती हैं। विजय का और न्याय का वही सम्बन्ध है, जो आग और पानी का। वीना के सम्मेलन ने यह स्पष्ट सिद्ध करदिया। योरप के वे छत्रपति, जो नैपौलियन के ऊपर बलात्कारी और मुंहज़ोर होने का दोष लगाते थे, स्वयं क्या करते हैं ? क्या उन्होंने छोटे२ देशों से पूछा 'कहो भाई! अब तुम्हें किसके पल्ले डालें ?' जिसे जहां चाहा धकेल दिया, जिसके जितने चाहे भाग करदिये। योरप के बड़े राष्ट्रों ने एक प्रकार का सहभोज कर लिया, जिसमें सबने यथा योग्य भोजन पाया। प्रशिया निर्बल था, वह रूस, इंग्लैंड और आस्ट्रिया के समान शक्ति न रखता था। आइये पाठक ! हम देखें कि उसके हिस्से में क्या आया ?



तीसरा परिच्छेद ।

प्रतिनिधि-सभा

वीना के राजसम्मेलन में, प्रशिया को सर्वथा निराश होना पड़ा । प्रशियन लोग जर्मनी को एक करना चाहते थे, सम्मेलन ने उनके वर्तमान भेद के बढ़नेके और भी साधन कर दिये। प्रशिया के देशभक्त चाहते थे कि जर्मनी की सब रियासतों के भाई चारे का मुखिया प्रशिया बने, किन्तु इस सम्मेलन ने यह उच्चपद आस्ट्रिया को दिया । आस्ट्रिया के सभापतित्व में जर्मन भाई चारा (German confederation) बनाया गया, जिसमें प्रशिया को दूसरा स्थान मिला। प्रशिया, बैबेरिया, सैक्सनी, और वुट्टम्बर्ग के अतिरिक्त पैंतीस छोटी २ रियासतों को इसमें मिलाया गया। इन सब रियासतों के आबादी और शक्ति के अनुयात से चुने हुए प्रतिनिधियों को मिलाकर, और आस्ट्रिया को उन सब का मुखिया बनाकर वीना के सम्मेलन ने अपना कार्य समाप्त कर दिया। जर्मनी के देशों का आस्ट्रिया सभापति–पहिले तो यही असम्भव था । फिर जो संगठन बनाया गया था, वह सैंकड़ों दोषों से युक्त था। उस में कार्य को सुधारने की, और उन्नति करने की शक्ति न थी । यदि उससे कुछ हो सकता था, तो यह कि समय २ पर उन्नतिके मार्ग पर चलने वाले देशों के रास्ते में कांटे बिछावे ।

इस भाई चारे का, जिस को डायट (Diet) के नाम से भी पुकारते थे, स्थान फ्रैंकफोर्ट था। इस डायट में, जर्मनी की सब रियासतों के प्रतिनिधि मिल कर, सारे जर्मनी देश के साथ सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों पर विचार करते थे । इस संगठन के अनुसार किसी एक देश को अधिकार न था कि वह भाई चारे के किसी दूसरे सभासद् के साथ विना डायट की आज्ञा के युद्ध करे । अन्यदेशों के साथ युद्ध करने के लिये सब स्वतन्त्र थे, परन्तु आपस में विना डायट से पूछे सन्धि विग्रह न हो सकते थे। भाई चारे के सभासदों के लिये यह आवश्यक था कि वे अपनी इसाइ प्रजा से–चाहे वे रोम कैथोलिक हों चाहे प्रोटैस्टण्ट–समान

न्याय का व्यवहार करें। साथ ही सब रियासतों को यह भी सलाह दीगई थी कि वे अपनी प्रजाओं को प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्य दें। यह एक आज्ञा न थी, किन्तु सलाह थी। अपनी सारी आज्ञाओं और सलाहों को पूरा करने के लिये डायट को यह अधिकार था कि वह तीन लाख सिपाही अपने पास रख सके।

देखने से प्रतीत होता है कि जर्मनी को इस भाई चारे से वड़ा लाभ हुआ होगा। किन्तु यदि इसके संगठन की निर्वलताओं पर ध्यान दें, तो सन्देह दूर होजाता है। कोई भी अत्यावश्यक विषय स्वीकृत नहीं समझा जा सकता था, जबतक डायट के सारे सभासद् उसको स्वीकार न करें। यह एक ऐसा नियम था, जो सारी मशीन को निकम्मी कर देता था। सर्व सम्मति–और फिर पास २ की रियासतों में सर्व सम्मति–हम कह सकते हैं कि असम्भव से भी कई दर्जे आगे थी। इसका फल यह हुआ कि अपने सारे दीर्घजीवन में इस डायट ने एक भी 'अत्यावश्यक' प्रश्न हल नहीं किया। योरप में जर्मन भाई चारे का शब्द निकम्मेपन का पर्यायवाची समझा जाता था। डायट की कला वनाई ही इसलिये गई थी कि रूई इसके अंदर तो डाल दीजाय, परन्तु निकले कभी नहीं। रूई भी गई और कपड़ा भी न मिला। इसी प्रकार यहां 'अत्यावश्यक' प्रश्न प्रविष्ट तो होजाते थे, किन्तु निकलना निषिद्धथा।

आस्ट्रिया को सभापति वनाना सवसे अधिक घातक हुआ। जर्मनी की भूमि पर स्वभावतः किसी जर्मन को ही प्रधानता मिलनी चाहिये थी। प्रशिया इस ऊंच पद का उम्मेदवार था। इस पद का अधिकार उसने अपने सूरमों के लहू को पानी की तरह वहाकर प्राप्त किया था। किन्तु वड़ी मूर्ति के पुजारी योरपियन नरेशों ने आस्ट्रिया को यह पद प्रदान किया। इस दशा में, आस्ट्रिया और प्रशिया की एक दूसरे से चिढ़ स्वाभाविक थी। दोनों एक दूसरे से चिढ़ते थे, दोनों ही भाई चारे में एक दूसरे को नीचा दिखाना चाहते थे। दोनों वलवान् चाहते थे कि अधिक प्रतिनिधियों को अपनी ओर अटेर लें। भाई चारा क्या था, आस्ट्रिया और प्रशिया का नीति–दंगल था। डायट के प्रतिनिधियों की गुप्त कोठरियां रहस्यमन्त्रणाओं से भरी रहती थीं। जहां ऐसी ईर्ष्या का प्रवल राज्य हो, वहां भला मेल और शान्ति की सम्भावना कैसे हो सकती थी?

इस प्रकार के फीके फल थे, जो प्रशिया को वाटर्लू के बदले में मिले। प्रशिया का राजा तीसरा फ्रेडरिक स्वभाव से निर्बल था, और आस्ट्रिया के मन्त्री के मन्त्रसे मुग्ध रहता था। वह समझता था कि प्रशिया की भलाई, उसका अपवर्ग, आस्ट्रिया का पैर चूमने में ही है। किन्तु प्रशियन प्रजा एसी बुद्धू न थी। उन्होंने एकता और स्वतन्त्रता को पाने के लिये अपने खेती और व्यापार को छोड़कर रणभूमि का रास्ता लिया था। जिसे राष्ट्रीयतारूपी सुधा के पीने के लिये उन्होंने अपने भाई और बन्धुओं को कुर्बान किया था, उसकी छाया भी उन्हें प्राप्त न हुई। उन्होंने जान लिया कि उन्हें ठगा गया।

इधर डायट में आस्ट्रिया के प्रधान सचिव प्रिन्समेटर्निच का दौर दौरा था। वह जो चाहता था, स्वीकार करा लेता था। प्रिन्समेटर्निच स्वाधीन विचारों को डरावना भूत समझता था। भाई चारे से उसने अपने प्रभाव से ऐसे निश्चय कराये, जिन्होंने जर्मनी में चलते हुए राष्ट्रीयता के प्रवाह को रोकना चाहा। राजनीति सभाओं का होना बन्द कराया गया, समाचारपत्रों के मुखों में ज़बर्दस्त लगामें लगाई गईं, और प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य को निरुत्साहित किया गया। प्रशिया में भी इस दबाव का प्रभाव पड़ा। वहां पर ऊपर कहे हुए सब अत्याचारों के साथ २ विश्वविद्यालयों पर भी कठोर निरीक्षण रक्खा गया। राज्य की ओर से शिक्षा के खुले हाथों में जंजीरें डाल दीं गईं। अध्यापक और प्रोफ़ेसरों को सरकार ने टके के गुलाम बनाने का यत्न किया। परमात्मा की ओर से मनुष्य को तीनही अमृत मिले हैं। विचार की स्वतन्त्रता उनमें से प्रथम है, प्रशियन सरकार ने शिक्षा को हाथ में लेकर उसका नाश करना चाहा। दूसरा अमृतवाणी और लेखनी की स्वतन्त्रता है, सभाओं और समाचारपत्रों के गलों में फांसी डालकर उस पर भी पानी फेर दिया गया। तीसरा अमृत क्रिया की स्वाधीनता है, पुलिस के डण्डेने उस का भी अंग भंग कर दिया। जगदम्बा के दिये इन तीनों अमृतों को छीन कर क्या प्रशियन सरकार ने घोर पाप नहीं किया था?

किन्तु "भयानक गर्मी से ही वर्षा आया करती है।" इस सारे अत्याचार ने जो शुभ परिणाम उत्पन्न किये, उनका सम्पूर्ण इतिहास बड़ा मनोरंजक है। किन्तु हमारे लिये वह सम्भव नहीं कि हम उसे यहां पर दे सकें। यह इतिहास

स्वयं एक जुदा पुस्तक चाहता है। यहां तो हम केवल प्रिंस विस्मार्क के जीवन की भूमिका बांधना चाहते हैं । विस्मार्क का जीवन उन्हीं सब घटनाओं का परिणाम था, जिन का हम यहां वर्णन कर रहे हैं। वह इन का सीधा फल था और साथ ही इस मँझधार में पड़ी हुई प्रशियन नौका का खेवय्या था।

डायट का बनना और आस्ट्रिया की मुख्यता ही प्रशिया को इस मंझधार में डालने के लिये पर्याप्त थी। किन्तु तिस पर देश के राजा का निर्बल और निकम्मा होना तो मानो पागल को धतूरा खिलाने के समान था । बूढ़ा राजा फ्रैडरिक, जिसकी निर्बलता नैपोलियन के साथ युद्धों में प्रकाशित हो चुकी थी, मर गया था, और १८४० में उस का पुत्र चौथा फ्रैडरिक विलियम गद्दी पर बैठा था। जो कुछ खान में हो, वही मिल सकता है। कोयले की खान में से सोना नहीं निकल सकता। जो पिता के गुण थे, नये राजा में भी उन्हीं का चमत्कार था। जब चौथा फ्रैडरिक अभी सिंहासन पर नहीं बैठा था, लोग बड़ी २ आशायें बांध रहे थे। उस का स्वभाव कुछ मृदु था, और लोग जानते थे कि उसके अन्दर जोश की भी मात्रा है । किन्तु सिर पर राजछत्र आते ही उसकी छाया से न जानें चौथे फ्रैडरिक विलियम की ज्ञानचक्षुयें क्यों मन्द पड़ गईं? वह भी राजाओं के 'देवतुल्य अधिकारों' का ध्रुव पद अलापने लगा। वह जितना ही अधिक बोलता था, उतना ही कम कार्य करता था। इसलिये धीरे २ लोग उसके बोलने से खिझने लगे । चार सौ वर्ष पुराने नीतिज्ञों के सिद्धान्त सुना २ कर वह लोगों को अपने पक्ष में किया चाहता था। प्रशिया के पढ़े लिखे उदार इच्छाओं वाले लोग, पहले तो राजाको क्षमा करते रहे, किन्तु धीरे २ उसकी बेहूदगियोंसे तंग आगये । क्या समाचारपत्र, और क्या व्याख्यानवेदी—सब में जहां तक सम्भव था, राजा की निर्बल और धोखा देने वाली नीति की समीक्षा होने लगी । लोग १८४७ में १४४७ के विचारों को सुनना पसन्द नहीं करते थे।

चौथे फ्रैडरिक ने राजगद्दी के समय और पीछे कई वार भी थोड़ी थोड़ी आशा दिलाई थी कि वह प्रशिया में प्रजा–प्रतिनिधि–सभा बना देगा, किन्तु वह आशा, आशाही रही। अब एक और कठिनता उपस्थित हुई। अन्य स्थानों के साथ २ जर्मनी में भी नई रेलवे की सड़कें बन रही थीं, उनके लिये धन आवश्यक

था। धन कहां से आय। जब और कोई बात न सूझी, तो राजा को एक पुराना राज-फ़रमान दिखाया गया। १८२२ में यह राजनियम हुआ था कि कोई नया करज़ा न लिया जाय, जब तक प्रजा के प्रतिनिधियों की सम्मति न लीजाय। करज़ा लेना ही एक साधन था, जिससे सरकार रुपया पा सकती थी, किंतु वह प्रजा के प्रतिनिधियों की सम्मति के बिना असम्भव था। राजा को बाधित होकर प्रतिनिधियों की सभा बुलानी पड़ी।

यह वही सभा थी, जिसमें हमारा चरितनायक प्रिंस बिस्मार्क पहले पहल आया था। यही कार्य यदि छः वर्ष पहले कर दिया जाता, तो लोग चौथे फ्रेडरिक विलियम के गुण गाते, किंतु इतने विलम्ब और आगा पीछा करने ने इस शुभ काम की शुभता को मार दिया। इसी पर बस नहीं हुई। लोग राजा के शुभ कार्य की प्रशंसा करने को तय्यार भी होजाते किन्तु प्रतिनिधिसभा का प्रारम्भ करते हुए राजा ने फ़र्माया कि 'यह याद रखना चाहिये कि मैं अपने ईश्वर और अपनी प्रजा के बीच में काग़ज़ का एक भी टुकड़ा न आने दूंगा।' इसका अर्थ यह था कि मैंने तुम्हें अपनी कृपा से बुला लिया है, तुम्हें किसी तरह का स्थिर प्रजातन्त्र शासन नहीं दिया। वे जातियां, जो देरतक यत्न करके स्वाधीनता का थोड़ा सा टुकड़ा पाती हैं, ऐसी बातें सुनना पसन्द नहीं करतीं। ख़ैर, चाहे लोगों ने राजकीय प्रशंसागीत गाये या नहीं, उन्हें प्रतिनिधिसभा मिल तो गई। इस सभा के साथ प्रशिया की और इसी लिये सारे जर्मनी देश की उन्नति में एक नया परिच्छेद शुरू हुआ। पाठकगण! इस परिच्छेद का वृत्तान्त आप अगले पृष्ठों में देखिये।



तीसरा भाग

तय्यारी



पहला परिच्छेद

पहला अधिवेशन

१८४७ में चौथे फ्रेडरिक ने प्रतिनिधिसभा का प्रारम्भ किया। अधिवेशन के शुरू में राजा व्याख्यान दिया करता है, उसी नियम के अनुसार फ्रेडरिक ने भी एक लम्बा भाषण किया। भाषण क्या था, एक अधकचरे कवि की बोलियां थीं। समाचारपत्रों के योग्य अत्युक्तियों और गलफाड़ वक्ताओं के योग्य जोशीले वाक्यों से सारी वक्तृता भरी हुई थी। समय की एक अजब खिचड़ी थी, जो सभा के सभासदों के सम्मुख रक्खी गई। एक ओर यदि उन्नीसवीं शताब्दि के भावों का गौरव दिखा कर प्रतिनिधिसभा के आधार पर आस्मानी क़िले बांधे गये थे, तो दूसरी ओर सड़ी गली पुरानी राज्यकल्पनाओं के हवाले दे दे कर अपने ईश्वरदूत होने की शेख़ी बघारी गई थी। व्याख्यान में अनेक रंग दिखलाये गये थे। कहीं धमकी थी, तो कहीं चापलूसी। कहीं अपनी शान दिखाई थी, तो कहीं प्रजा की महिमा। इस प्रकार के अद्भुत भाषण के साथ प्रतिनिधिसभा का प्रथम अधिवेशन शुरू हुआ।

अधिवेशन शुरू करते हुए, राजा की ओर से, प्रतिनिधियों को कहा गया था कि 'मैंने यह बड़ी कृपा की है कि तुम्हारी अयोग्यता पर ध्यान न देकर प्रतिनिधिसभा में आने का अधिकार दे दिया है।' साथ ही ठीक आदरपूर्वक व्यवहार करने का उपदेश देकर धमकी भी देदी थी कि "यदि तुम लोग 'प्रजा के मन माने प्रतिनिधि' होने की शेख़ी में आ जाओगे, तो मैं सभा को उड़ा दूंगा।" अन्त में सर्वसाधारण के स्वतन्त्रता के कोलाहल का वर्णन करते हुए आपने फ़र्माया था 'कि मैं नहीं चाहता कि मेरे परमेश्वर और मेरी प्रजा के मध्य में कोई क़ागज़ का पुर्ज़ा आय'।

लोगों की जो आशायें बंधी थी, उन पर पानी फिर गया। इस पहले भाषण ने उन्हें खिझा दिया, और उन के प्रसन्न मुखोंपर असन्तोष की रेखायें डालदीं।

सभा में एक उदार दल समझा जाता था, जिस का नेता जार्ज. फौन विन्के था। इस दल के लोगों ने इंग्लैंड और फ्रांस के इतिहास का खूब अनुशीलन किया था। इन के दिमागों में हैलम और गूज़ियो की पुस्तकों की पंक्तियां सारा दिन घूमा करती थीं, और फ्रांस की राज्यक्रान्ति और इंग्लैंड के '*नियमों के शासन*' के चित्र चक्कर काटा करते थे। इंग्लैंड को स्वाधीनता का इतिहास इन्होंने पढ़ा था, और उसी की पुनरावृत्ति जर्मनी में भी कराया चाहते थे। पिम हैम्डन और क्रामवेल के नाम उन की जीभ के किनारे पर रहते थे, और बात बात में बाहिर निकल आते थे।

इन की कई शिकायतें सच भी थीं। सभा को मिला ही क्या था? यद्यपि नाम को प्रतिनिधियों की सभा बनादी गई थी, तथापि प्रबन्ध ऐसा किया गया था, जिस से नगरों के प्रतिनिधि ज़मीन्दार लोगों के प्रतिनिधियों से कम रहें। इस में गुह्यतत्त्व यह था कि स्वाधीनता उन्नति और एकता के अधिक विचार सदा नगरों में ही निवास करते हैं। वहीं वे उत्पन्न होते और वहीं फैलते हैं। वहां से छन कर वे ग्रामों में जाते हैं, किन्तु छनने और जाने में बहुत देर लगती है। इसी लिये गांव के निवासी देर तक राजा के भक्त रहते हैं। प्रजा की सत्ता और स्वाधीनता के विचार उन तक बहुत देर में पहुंचते हैं।

इस सभा में उनके प्रतिनिधियों की अधिकता रखी गई थी। ऐसा कोई नियम नहीं था कि प्रतिनिधिसभा का अधिवेशन किसी नियत समय पर अवश्य हो। यह राजा की इच्छा पर था। जब तक सरकार को धन की विशेष ज़रूरत न हो, अथवा कोई नया क़र्ज़ा न लेना हो, तब तक सभा को बुलाना या न बुलाना राजा के ही हाथ में था। इससे उदारदल के लोग बहुत असन्तुष्ट थे। उन्होंने शुरू शुरू में ही घोषणा देदी कि 'इस सभा में हम धनसम्बन्धी कोई प्रस्ताव पास न करेंगे क्योंकि अभी यह ठीक तौर से बनाई ही नहीं गई, इसी लिये इसे नियम बनाने या प्रस्ताव पास करने का अधिकार भी नहीं'। साथ ही एक प्रार्थनापत्र तय्यार किया गया, जिस में राजा से और अधिक अधिकारों के लिये प्रार्थना की गई। सभा के शिक्षित लोगों का एक बड़ा हिस्सा उदारदल के साथ था। इस प्रकार के अधिकार बढ़ाने के प्रस्ताव खूब ज़ोर शोर से पास हो रहे थे, किन्तु एक

सभासद् था, जो यद्यपि चुपचाप था, तथापि उसके माथे पर चढ़ी हुई त्योरी और हिलते हुए होठ बतला रहे थे, कि उसके दिल में इन बातों को सुनकर आग लग रही है। वह इस सारे शोर को बकवास समझता है, और किसी अन्य ही लहर में बहा जा रहा है।

थोड़ी देर इसी प्रकार चिन्ता में पड़े रहकर वह खड़ा होता है। चारों ओर से एक दम शोर मच जाता है। कोई 'शाबाश' 'शाबाश' पुकारता है, कोई 'बैठ जाओ' 'बैठ जाओ' चिल्लाता है। किसी ओर 'छिः छिः' का शब्द हो रहा है, तो कई सभासद् अनुमति की तालियां बजा रहे हैं। इसी शोर शार में वह सभासद् बोलना शुरू करता है। सब से पहले वह राजा की प्रशंसा करके सभासदों को बतलाता है कि हमें प्रतिनिधिसभा देकर उन्होंने हम पर बड़ा उपकार किया है। उनकी उदारता का वर्णन करता हुआ फिर वह उन सभासदों की नीचता के साथ उसकी तुलना करता है, जो इस मिले हुए नये अधिकार को पाकर भी कृतज्ञता प्रकाशित नहीं करते और अधिक अधिकारों के लिये शोर मचाते हैं। अन्त में राजा के गौरव में ही जर्मनी का गौरव बतला कर वह उन लोगों की खबर लेता है जो बार २ इंग्लैंड का दृष्टान्त देते हैं। सभा में फिर चारों ओर शोर मच जाता है, लोग बोलने वाले की बात को सुनना पसन्द नहीं करते और छिः छिः की ध्वनि सब ओर से आने लग जाती है। बिना किसी प्रकार की घबराहट के, बोलने वाला प्रतिनिधि, एक अखबार का टुकड़ा जेब से निकाल लेता है, और उसे पढ़ने लगजाता है, मानो वह लोगों के इस शोर को बालक्रीडा समझता है। इस उपेक्षा से शर्मिन्दा हो कर और कुछ थककर जब सभा शान्त हो जाती है, तो बहादुर वक्ता उसी ढंग पर सभा के उदारदल को फिर झाड़ने लगता है।

पाठक महाशय! आप पूछेंगे, यह विचित्र ढांचे का सभासद् कौन है, जो सारी सभा की परवा न करके अपना ही राग अलापता है? यह और कोई नहीं, हमारे इस जीवनचरित का नायक, किसी से न डरने वाला, बिस्मार्क है।

जब कोई बड़ी आंधी आती है, छोटे २ वृक्ष झुक जाते हैं। जो झुक नहीं सकते, वे टूट जाते हैं। महान् वह पर्वत है, जिस की शिलाओं के साथ

आंधी टक्कर पर टक्कर मारती है, और हिला नहीं सकती। हवा के झोंके के साथ उड़ जाना सहल है, उस को चीर देना किसी २ का ही काम है। जो जंगल गंगा के बलवान् प्रवाह के साथ बह जाते हैं, उन्हें कौन याद करता है; जगद्विख्यात वह हिमालय है, जिस की चट्टानों से गंगा के उमड़े हुए स्रोत ठोकरें खाते हैं, वे उछलते हैं, कूदते हैं, और शोर मचाते हैं; किंतु रास्ता नहीं बना सकते, और स्थान २ पर इधर उधर भटकते फिरते हैं। जर्मनी के मनुष्यसागर में उस समय प्रजातन्त्रता की लहर ज़ोरों पर थी, राजा के अधिकारों को कम करके इंग्लैण्ड और फ्रांस के दृश्य देखने की उमंगें शिक्षितसमुदाय के चित्तों को चंचल कर रही थीं। ऐसे समय, चलती लहर में तूंबे डाल कर पांव पसार देने वाले बहुत थे, किंतु क्रान्ति के भयावने परिणामों को देखने वाला, जर्मन लोगों के स्वाभाविक राजप्रेम को समझने वाला, और देशकी असली आवश्यकताओं को पहिचानने वाला एक ही आदमी था, और वह बिस्मार्क था। वह प्रशिया की स्वाधीनता का विरोधी नहीं था, वह महान् फ्रेडरिक की स्थापित की हुई कीर्ति को पुनरुज्जीवित करने का बड़ा ज़बरदस्त वकील था, किन्तु जर्मनी के शिक्षित समुदाय की अधीरता को वह पसन्द न करता था। क्रान्ति में उस का विश्वास नहीं था, वह विकास का पक्षपाती था। जर्मनी की विशेष अवस्थाओं पर ध्यान न देकर, केवल अन्य देशों का अनुकरण करने वालों को वह कमसमझ समझता था।

हम यह कहने को तय्यार नहीं हैं कि बिस्मार्क की सम्मतियां इस विषय में सर्वथा ठीक थीं, और उस के विरोधियों की सर्वथा असत्य थीं। यह मानना पड़ेगा कि राजा में उस की थोड़ी सी अनुचित भक्ति थी। यह भी कह सकते हैं कि सारी जर्मन प्रजा के लाभों की अपेक्षा वह अपनी श्रेणि के लोगों के हिताहित पर शुरू शुरू पर अधिक ध्यान देता था। किन्तु बस इतना ही है, जो उस के विरुद्ध कहा जा सकता है। ऊपर की बातें मानते हुए भी, यह कहे विना कोई नहीं रह सकता कि जर्मनी की प्रजा की प्रकृति को और देश की असली दशा को यदि कोई समझता था तो वह बिस्मार्क था। वह जानता था कि उस की मातृभूमि की मुक्ति का रास्ता किधर को जाता है। जर्मन साम्राज्य

की स्थापना हुए आज चालीस से ऊपर वर्ष हो चुके हैं, किन्तु क्या जर्मन निवासियों की अपने राजा में श्रद्धा एक अणु भर भी कम हुई है ? क्या जर्मनी का सम्राट् प्रजा की दृष्टि में आज भी योरप के और सब नरेशों से अधिक ज़बरदस्त नहीं है ? जब आज यह दशा है तो आज से ७० के लगभग वर्ष पूर्व ही जर्मनी के राजा की शक्ति को न्यून करके स्वाधीनता की चाहना करने वाले लोग इतिहास के मर्म से अनभिज्ञ नहीं थे तो क्या थे ?

बिस्मार्क की राय थी कि इंग्लैंड और फ्रांस के दृष्टान्त जर्मनी को नहीं उठा सकते। इतिहास सब देशों में एक ही ढांचे पर तैयार नहीं होता । राजनीति ऐसा पदार्थ नहीं है, जिसे एक ही मैशीन में डाल कर तय्यार करते जांय। इस में कुछ अधिक बात भी है। हर एक देश का भविष्य उस के गुज़रे हुए समय पर बनता है। हम कभी समय को बीच में से काटकर अलहदा नहीं कर सकते; इतिहास में और मनुष्यजाति के घटनाचक्र में धड़ पर हाथी का सिर रख कर गणेशजी तैयार नहीं कर सकते । इस लिये एक देश के भाग्यों का निश्चय करते हुए दूसरे देश के दृष्टान्तों को बार २ याद करना कभी लाभदायक नहीं होता। हर देश की पहली अवस्थायें उस के भावी समय की निश्चायक होती हैं। बिस्मार्क इस बात को खूब समझता था, और इस पर बल देता था।

प्रतिनिधिसभा का यह अधिवेशन उदारदल के इसी झगड़े में व्यतीत हुआ। बिस्मार्क भी नये अधिकार चाहने वालों के साथ शब्द युद्ध करने में ही लगा रहा। अधिवेशन के शुरू में वह बहुत कम बोलता था । लगभग एक मास तक तक तो वह बिल्कुल चुप रहा। आख़िर उस से न रहा गया। जब वह बोलने लगा तो उस के विरोधी उस के नाम से डरते थे। यह ठीक बात है कि उस की स्वर ऊंची या गहरी नहीं थी, यह भी ठीक है कि उस की चेष्टायें बहुत ज़बरदस्त न थीं किन्तु उस के बोलने में एक प्रकार का बल था जो तीखेपन के साथ मिल कर विपक्षियों का नाक में दम कर देता था। वह शिथिल बोलना जानता ही न था। जो कुछ कहता था तेज़ी और बल के साथ। इसीलिये जब वह बोलने उठता था, चारों ओर से विरोधियों के अप्रसन्नता सूचक और मित्रों के प्रसन्नता-

सूचक शब्द सभाभवन में गूंजने लगते थे। किन्तु बिस्मार्क उस चट्टान के समान था, जिस पर न शिशिर का असर होता है और न वसन्त का।

इसी प्रकार झगड़ते झगड़ाते प्रतिनिधिसभा ने अपनी पहली बैठक समाप्त की। इस बैठक में कोई आवश्यक विषय तय नहीं हुआ। यहूदियों को अधिकार देने के लिये राजा की ओर से कुछ प्रस्ताव हुए, तो बिस्मार्क ने उन का विरोध किया। मानना पड़ेगा कि बिस्मार्क का यह कार्य किसी भी न्माययुक्त नीति से अनुमोदित नहीं था। इस बैठक में और कोई कार्य हुआ हो या न हुआ हो, इस में संदेह नहीं कि जर्मनी के भावी निर्माता ने राजनीतिक जगत् में खासा नाम पैदा कर लिया। राजा को ज्ञात होगया कि प्रतिनिधिसभा में उसका एक भक्त भी है, और उदारदल को ज्ञात होगया कि देश में उस का एक विरोधी भी है। लगभग ग्यारह सप्ताह तक वाग्युद्ध करने के पीछे प्रतिनिधिसभा के सभासदों को घर का रास्ता दिखाया गया। कहते हैं कि प्रतिनिधियों को अपने अपने नगर में लौटने पर खूब अभिनन्दनपत्र मिले और उन के गलों में स्तुति के हार डाले गये। किस मैदान मारने के बदले में—यह भगवान् ही जाने।

प्रतिनिधिसभा से लौटने पर बिस्मार्क के जीवन में भी एक विशेष घटना हुई। १८४७ के अगस्त में उसका विवाह होगया। कहते हैं, उस के विवाह के समय उस के नाम का प्याला प्रस्तुत करते हुए वधू के एक सम्बन्धी ने कहा था कि 'हमारे मित्र बिस्मार्क के शरीर में दूसरा ओटो उत्पन्न हुआ है, जो इस देश के लिये वही काम करेगा जो सैक्सनी के ओटो ने आठ सौ वर्ष पूर्व किया था'। किसे पता था कि केवल मज़ाक में कही हुई यह बात एक भविष्य वाणी के समान होगी।

विवाह के पीछे इस मंगलघटना का आनन्द लूटने के लिये बिस्मार्क वधू समेत इटली आदि सुन्दर देशों की शुभयात्रा के लिये प्रस्थित हुआ। जब वह इटली पहुंचा, प्रशिया का राजा भी वहीं से गुज़र रहा था। वह भी सुन्दर इटली के आनन्द लूट रहा था। बिस्मार्क का नाम प्रतिनिधिसभा की रिपोर्टों

में राजा की दृष्टि से गुज़र चुका था। इटली में ही उसे भी आया सुन कर सच्चे भक्त बिस्मार्क को राजा ने भोजन के लिये अपने पास बुलाया, और देश की नीतिक अवस्था पर ख़ूब बातचीत की। बातचीत से राजा का यह विश्वास और भी बढ़ गया कि भविष्य में यदि उस का कोई आधार है, तो यही मनुष्य है। उस दिन से बिस्मार्क का नाम प्रशिया के राजकर्मचारियों और राजा के कृपापात्रों में सब से ऊपर लिखा गया।

दूसरा परिच्छेद

क्रान्ति की ज्वाला

योरप का ज्वालामुखी फिर फूट पड़ा । फ्रांस की प्रजाने फिर एक
अपने जोश को उबाला दिया । अट्ठारह साल पूर्व जिस लूई फिलिप को
से लाकर राजसिंहासन पर बिठाया था, आज उसी को फिर राजपद से अ
होना पड़ा । २४ फरवरी १८४८ के दिन पेरिस के जनसमूह ने राजमह
पर हमला किया । राजा ने अपनी रक्षा के लिये राष्ट्रीय सेना पर भरो
किया था, समय पर उसने भी उत्तर देदिया । चारों ओर से निराश होकर बेच
फिलीप ने स्वयमेव राजसिंहासन छोड़ दिया । जनसमूह का फिर एक वार वि
हुआ । एकसत्तात्मक राज्य का अन्त हुआ और रिपब्लिक स्थापित होगई ।

ज्वालामुखी के फटने की धमक चारों ओर बड़े बेग से फैलगई । स
देशों ने उसके बल का अनुभव किया । जहां यह समाचार पहुंचा, वहीं पर प्रज
में हलचल सी मचगई । उन दिनों में प्रजासत्ता के विरुद्ध एक राजा का स
से ज़बर्दस्त किला आस्ट्रिया था । उसके राजा बोर्बौन वंश की सन्तान थे । योरप
पश्चिम में उससे अधिक विस्तृत साम्राज्य और किसी देश का न था । फिर इ
दोनों बातों से बढ़कर, उसका राजसचिव प्रिंस मैटर्निच था, जो सारे योरप
मानों एक सत्तात्मक राज्य की कलको चला रहा था । इन कारणों से आस्ट्रिय
एकराजसत्ता का डेरा होरहा था ।

१८४८ की क्रान्ति का धक्का सब से पहले वहीं पहुंचा । इटली देश
जो स्वाधीनतायुद्ध में पहली वार उठकर बड़ी गहरी चोट खाचुका था, इस
समाचार को सुनते ही फिर एक वार उठ खड़ा हुआ । उधर हंगरी में राष्ट्री
जागृति का भाव खूब करामातें दिखला रहा था । वहां भी इस समाचार ने
सनसनी फैलादी थी । क्या इटली और क्या हंगरी, इन दोनों का जोश असल में
आस्ट्रिया के ही विरुद्ध था । उसका असर आस्ट्रिया की राजधानी वीना पर

गी हुआ। वीना का जनसमूह जोश में भरकर चढ़ आया, सेनाओं की कोई पूछ न रही, और सम्राट् भी अशक्त होगया। सारी राजधानी जनसमूह के वश में होगई। एकसत्तात्मक शक्ति का शरीरधारी पुतला प्रिंस मैटर्निच अत्याचारी मनुष्य के सारे गुण दिखलाता हुआ ऐन मौके पर इंग्लैंड को भाग गया। जो अत्याचारी है, वह भीरु अवश्य होगा। अत्याचार करने वाला जानता है कि अत्याचारपीड़ित मनुष्य का दुःख कैसा होता है, उसी दुःख की याद उसे डरपोक बनादेती है। प्रिंस मैटर्निच भी जनसमूह के धावे का नाम सुनते ही भाग निकला।

वीना से चलती हुई हलचल प्रशिया में भी पहुंची। चारों ओर से 'सुधार' 'सुधार' और 'अधिकार, 'अधिकार' का शोर मचगया। लोगों के निवेदनपत्र धड़ाधड़ आने लगे। राजा को धमकियां दी जाने लगीं। 'निर्बलता में ही मृत्यु है' इस सिद्धान्त को साम्हने रख कर, राजा ने अधिकारविषयक सब निवेदन पत्रों का रूखा उत्तर दिया। लोगों ने चाहा कि स्वयं सरकार से भेंट करके अपने दुखड़े कहें, परन्तु उत्तर मिला कि 'राजा साहिब को समय नहीं है'। समझदार लोगोंने हलके सुधारों द्वारा प्रजाको शान्त करने की सलाह दी, वह भी पत्ते पर पानी की तरह ही रही। आखिर सब कुछ करके लोग निराश होने लगे। उनके दिल टूटने लगे। ऐन उस समय वीना से समाचार आया कि वहां क्रान्ति सफल होगई। बस फिर क्या था, इस समाचार ने रुई में चिनगारी फेंक दी। ठण्डा होता हुआ जोश फिर से धधक उठा। बड़ी बड़ी जंगी सभायें होने लगीं, और उन में भड़काने वाले व्याख्यानों का तांता बंध गया। लोग शब्दों से आगे चलकर शस्त्रों की भी तय्यारी करने लगे। बर्लिन में जगह २ मोर्चे बंध गये।

जब जोश यहां तक पहुंचा, तब राजा के हृदय ने उसे जवाब दे दिया। उसका साहस शिथिल हो गया। सोलहवें लुई की आत्मा उसकी आंखों के साम्हने आकर अपनी दीन दशा दिखलाने लगी। क्रान्तिराक्षस फांसीघर की ओर उंगली करके जंभाइयां लेने और दांत दिखाने लगा। राजा घबराया, और घबराकर उसने घोषणा कर दी कि प्रजा जिन जिन सुधारों को चाहती है, वे कर दिये जायंगे। यह समाचार बिजली की तरह चारों ओर फैल गया। जन समूह

ने हर्षनादों और तालियों द्वारा इसका अभिनन्दन किया। इस प्रकार अधिकार पा कर लोगों के दिलों में राजा के प्रति कृतज्ञता का भाव उत्पन्न हुआ, और उसी के प्रकाशित करने के लिये बर्लिन के निवासी राजमहलों के पास एकत्र होने लगे, और राजा की प्रशंसा के गीत गाने लगे। राजा ने जब सर्व-साधारण के इच्छास्रोत में एकबार किश्ती डाल दी तो फिर कोई बचाव न था। घोड़े पर सवार होकर, आप, लोगों को दर्शन देने के लिये महल से बाहिर आगये। उस समय लोगों को थोड़ी दूरी पर कुछ सिपाही दिखलाई दिये। जनता ने आग्रह किया कि राजा और प्रजा के ऐसे मंगलमिलाप के समय सिपाहियों का होना ठीक नहीं है। इस पर सिपाहियों का हटना तो दूर रहा, उनकी श्रेणियों की श्रेणियां आगे बढ़ने और लोगों को राजा के स्थान से बाहिर निकालने लगीं। इस गड़बड़ में दो सिपाहियों की बन्दूकों में से गोलियां छूटगईं। गोलियों का छूटना मानों लड़ाई की सूचना थी। आन की आन में राजभवन ने वाटर्लू का रूप धारण कर लिया। लोग तो पहले से ही सन्दिग्धावस्था में थे और लड़ाई की तय्यारियां कर चुके थे। गोलियों का छूटना था कि चारों ओर 'विद्रोह, 'धोखा' 'बदमाशी' आदि शब्द गूंजने लगे। रंग में भंग पड़ गया। राजा अपना सिर बचाकर घरमें घुस गया, और प्रजा और सेना में जंग शुरू हो गया।

रात भर गोलियां दनदनाती रहीं। बाज़ारों की एक एक दूकान मोर्चों का काम देने लगी और एक एक खिड़की मानों गोलियों की खान हो गई। खूब नरहत्या हुई, पेरिस के दृश्य बर्लिन में भी दिखाई देने लगे। आखिर प्रभात हुआ। पूर्वदिशा से उदित होते हुए भगवान् भास्कर ने बर्लिन की गलियों को लहू से लाल देखा। सूर्य भी प्रातःकाल पूर्वदिशा में सिन्दूर बखेरता है, किन्तु उसका प्रयोजन रक्षा होता है, नाश नहीं। देव में और मनुष्य में यही भेद है। मनुष्य का बखेरा हुआ सिन्दूर उसके राक्षसीय भावों का परिचायक होता है। उसके अन्दर ईर्ष्या द्वेष और विरोध कूट कूट कर भरे होते हैं। मनुष्य नहीं जानता कि उसका भला काहे में हैं, और बुरा काहे में। इसी मूर्खता में पड़ा हुआ वह बड़े से बड़े अनर्थ कर देता है। मित्रों को शत्रु बनाकर, जगदीश्वर की बनाई सृष्टिका नाश करके और सेरों रुधिर बहाकर जब आदमी विचारता है तो उसे पता लगता है, कि यह सारी हत्या जिस कारण से हुई—वह तो एक भूल थी।

एक शब्द का अर्थ अशुद्ध समझ लिया, एक खत की पंक्ति का भाव समझने में भूल होगई, बस इतने पर ही लकड़ी चल गई, सिर फट गये और अदालत की नौवत आगई। यही दशा यहां हुई। भूल से दो गोलियां चल गईं, लोगों को भ्रम हुआ कि शायद उन पर आक्रमण हुआ है, और इसी पर रात भर लड़ाई होती रही।

रात गुज़र गई, साथ ही लोगों का पराक्रम भी क्षीण होगया। दो चार घंटों तक हत्थापाई कर लेना और बात है और जर्मनी के सिपाहियों के साथ लड़ते झगड़ते रहना दूसरी बात है। अन्त को सेना का ही विजय हुआ। शारीरिक विजय तो सेना का हुआ, किन्तु धार्मिक विजय लोगों के साथ रहा। शिकायत करने का अधिकार प्रजा को ही बना रहा। राजा उस आने वाली शिकायत के भार से पहले भी दब गया। प्रजासत्ता के विरोधी मन्त्रिदल को पदच्युत कर दिया गया, सेनाओं को शहर की हदसे बाहर निकाल दिया गया, और सब राजनीतिक अपराधियों के अपराध क्षमा किये। पहले दिन के झगड़े में जो लोग मारे गये थे, उनकी अरथियां जिस समय बाज़ार में से गुज़र रही थीं, उस समय राजा ने अपने महल की खिड़की में नंगे सिर खड़े होकर शोक प्रकाशित किया। यहीं तक बस नहीं हुई। प्रजाका विजय एक कदम और भी आगे बढ़ गया। सारे बड़े २ सर्दारों राजकर्मचारियों और राजपुत्रों से अनुगत चौथे फ्रेडरिक ने क्रान्ति के झण्डे के साथ २ राजधानी की गलियों में दौरा भी लगाया।

जब बर्लिन में प्रशिया की राजसत्ता इस प्रकार ठोकर पर ठोकर खारही थी, जर्मनी का भावी निर्माता बिस्मार्क अपने पुराने निवासस्थान शौन हौज़न में देहात की शुद्ध हवा खा रहा था। उसने जब बर्लिन का समाचार सुना तो मानो चेतनारहित होगया। राजा का अपमान सुनकर उसका हृदय क्रोधाग्नि से जल उठा। उसे पता लगने लगा, मानों किसी ने उसकी मान-मर्यादा पर बट्टा लगाया है। उसे असह्य कष्ट हुआ। उसी कष्ट से प्रेरित होकर, जर्मन राज्य के मानकी रक्षार्थ वह अपना तन मन और धन अर्पण करने के लिये बर्लिन को भागा आया। वह इस विचार से प्रेरित होकर राजधानी में आया था कि राजा की रक्षा की आवश्यकता होगी तो, वह अपने सिर उसके चरणों में रखदेगा, किंतु राजभवन में पहुंचने से पूर्व ही उसे

निराश होना पड़ा। जब वह राजभवनों में पहुंचा, चौथा फ्रेडरिक उससे पूर्व ही लोकमत के साम्हने सिर झुकाचुका था। बिस्मार्क ने देखा कि राजा के चरणों में सिर रख देने के साथ ही उसे लोकमत का दासानुदास होना पड़ेगा, क्योंकि राजा लोकमत का दास होचुका था।

राजा की निर्बलता से निराश और खिन्न होकर वह पुराने राजसचिवों और सेनापतियों के पास गया, और उन्हें उत्साहित करके डूबती हुई राजसभा को उठाने का यत्न प्रारम्भ किया। किन्तु वहां उसकी रहती सहती आशा भी टूट गई। सबने यही कहा कि शह लगचुकी, अब सिर पीटना व्यर्थ है। किंतु बिस्मार्क उस दिन न जन्मा था, जिस दिन हिम्मत हार दी जाय। वह बेदिल होना जानता ही न था। उसी समय उसने एक लम्बा प्रार्थनापत्र राजा के नाम लिखा, जिस में अपनी राजभक्ति का वर्णन करते हुए बतलाया कि 'देश में इस समय भी एक ऐसा जनसमूह विद्यमान है, जो लोकमत को तुच्छ समझता है और राजसत्ता की रक्षा के लिये अपने तनके एक २ टुकड़े को अर्पण करने के लिये तय्यार है। इस पत्र पर उसने शौनहौज़न के बड़े २ सब आदमियों के हस्ताक्षर करालिये। पत्र राजा के पास भेज दिया गया। कहते हैं कि उसे पढ़कर राजा की आंखों में आंसू भर आये, और कई दिनों तक वह पत्र मेज़ पर खुला हुआ धरा रहा। जब कभी कोई आपत्ति आती तो राजा उसी पत्र को पढ़कर दिल को ढारस देता था।

२ अप्रैल १८४८ के दिन राजा ने जर्मनी के प्रतिनिधियों की सभा बुलाई जिसका उद्देश्य प्रशिया की भाविनी राज्यसंस्था का बनाना था। बिस्मार्क उसका सभासद् बना और नये विचारों से भरे हुए प्रतिनिधियों का भरसक विरोध करने लगा। प्रारम्भ में ही राजा को धन्यवाद का एक अभिनन्दन पत्र देने का विषय प्रविष्ट किया गया, जिस में प्रजा के शब्द को सुनने के लिये कृतज्ञता प्रकाशित की गई थी। बिस्मार्क ने अभिनन्दनपत्र का कठोर विरोध किया, क्योंकि उसकी सम्मति में लोकमत का सुनाजाना उदारता का नहीं भीरुपन का चिन्ह था।

सभा की चार बैठकें हुई, जिनमें अगली राष्ट्रीय समिति के लिये नियमादि तय्यार किये गये। इस बीच में बिस्मार्क चुप नहीं रहा, उसका चित्त एक मिट्टी

ढेले के समान न था, जो जहां हो, बैठा रहे और जब कोई अन्य शक्ति आकर
ने उठाकर किसी काम में लगादे, तो लगजाय। उस का मन बहते हुए पानी के
ान था, जिसके लिये चलना आवश्यक था। यदि इधर की गति किसी
रण से रुकगई, तो उधर को चलदिया, एक जगह ठहरना उस के लिये सम्भव
था। अपने समान विचार रखने वाले, कई मित्रों के साथ मिलकर उसने एक पत्र
ाया जिसका नाम 'नया—प्रशियन-गज़ट' था। पत्र का उद्देश्य, सम्पादकों के
ब्दों में, प्रशिया की राजसभा की रक्षा करना और उसमें फैले हुए अराजकता-
द का प्रतीकार करना था। बिस्मार्क उसमें प्रायः लिखा करता था। राष्ट्रीय
मिति की कार्यवाही पर सम्मति देने वाला उससे अच्छा पत्रप्रेरक गज़ट के
स कोई न था, उसके लेखों में विशेषता यह हुआ करती थी, कि उनमें
दा पौरुष और वीरता का अवलम्बन रहता था। उसका सिद्धान्त था कि जो
छ किया जाय, पूरे दिल से और पूरे यत्न से निडर होकर किया जाय। दुतर्फा
ाति चलना, न इधर ही आना और न उधर ही जाना उन्नति के रास्ते में पूरी
कावट डालता है। प्रजातन्त्रवादियों का वह शत्रु था, और उस शत्रुता को
पाने की कभी कोशिश भी न करता था।

इस पत्र ने जो काम शुरू किया था, निस्सन्देह वह बड़ी हिम्मत का था।
ारा देश एक ओर और चार पांच बांके बहादुर दूसरी ओर। बर्लिन के बाज़ार
ा स्वाधीनता और प्रजासभा के नामसे गूंज रहे थे, किन्तु एक पत्र के कार्यालय
बैठे हुए तीन चार वीर उस के विरुद्ध कार्यप्रणाली सोच रहे थे, और लोक-
त के चलते हुए सिन्धनद को बाहुओं से रोकना चाहते थे।

पहले पहल तो इस पार्टी का काम निष्फल ही प्रतीत होता था। यह
ात होता था कि 'नये प्रशियन गज़ट' के लेख जंगल में रोने के समान हैं।
किन्तु धीरे धीरे कालचक्र ने ऐसा समय उपस्थित कर दिया कि लोगों का पहला
ाचार पलटने लगा। राजा, जो पहले इस वीर दल से उदासीन सा दीखता था,
ाशा भरी दृष्टि से इन्हीं की ओर देखने लगा। यह कहें तो भी अशुद्ध न
ोगा कि कुछ दिनों के लिये सारे देश की दृष्टि इसी ओर लग गई।

———

तीसरा परिच्छेद।

ज्वाला बुझ गई।

घर २ में विजय की दुन्दुभि बजने लगी। प्रजा को सारे अधिकार मिल गये। लोग सोचने लगे कि अब जर्मनी इंगलैण्ड या फ्रांस से कम किस बात में रहा। यदि वहां की प्रजाओं ने क्रान्तिरूपी शस्त्र की सहायता से अपने अधिकारों को प्राप्त किया है, तो क्या जर्मनी ने नहीं किया? यदि पेरिस की दीवारों पर क्रान्ति का तिनरंगा झण्डा लहरा रहा है, तो क्या बर्लिन कुछ कम है? यदि उन देशों में प्रजा के प्रतिनिधियों की सभा ही शासन करती है, तो बर्लिन में भी राजमुकुट की दमक धीमी नहीं पड़ रही? ऐसे विचार थे, जो जर्मनप्रजा के हृदयों को प्रफुल्लित कर रहे थे।

आये हुए अधिकारसुख को नित्य समझने वाली प्रतिनिधिसभा भी अपनी धुन में लगी थी। उस सभा में पहले से ही गर्मदल प्रधान था। अपनी शक्ति को अबाधित देख कर उस की हिम्मत भी बढ़ने लगी। राज्य का संगठन इस प्रकार का बनाया जा रहा था कि उस में राजा के कोई अधिकार न शेष रहें, सभा का दूसरा शाही हुकुम सेनाविभाग के मन्त्री के नाम निकला कि जो २ सेनापति प्रतिनिधिसभा के शासन को पसन्द न करते हों, वे अपना बोरिया बिस्तर बांध कर रवाना हो जांय। इधर सभा की ये ज्यादतियां हो रही थीं और उधर प्रजा का जोश बढ़ रहा था - मद से अन्धा हुआ जन समूह सभा के द्वार पर आ कर गर्जता था। सभा में लोकमत के विरुद्ध शब्द उठाना मानो मृत्यु को किराया दे कर घर बुलाना था। जोश में भरी हुई प्रजा ने राजकीय शस्त्रागार पर हमला किया और बलात्कार से बहुत से अस्त्र शस्त्र लूट लिये।

प्रजाका और प्रजा के प्रतिनिधियों का हौसला इस प्रकार चढ़ता देखकर ढीली प्रकृति के राजा को भी चिन्ता उत्पन्न हुई। उसके ठण्डे कान पर भी जूं रींगने लगी। बिस्मार्क और उसकी पार्टी के भी यह अवसर हाथ आया। उन्होंने राजा को भड़काना और उत्साह देना प्रारम्भ किया। उन्होंने उसके दिल में यह डालने की कोशिश की कि यदि इस समय सर्वसाधारण के भयानक

मृत को न दबाया गया, तो भविष्य में सारी सत्ता हाथ से निकल जायगी। बिसमार्क और उसके साथियों ने बहुत यत्न किया, किन्तु वह निष्फलप्राय दीख पड़ा। शिथिलप्रकृति राजा हिम्मत नहीं बांध सकता था। वह कभी इधर और कभी उधर झुकता था।

जो कार्य इतने लोगों की उत्तेजना न कर सकी, वह एक छोटे से तार समाचार ने कर दिया। आस्ट्रिया की राजधानी वीना से तार आया कि वहां राजकीय सेनाओं ने नगर में प्रवेश करके प्रजापक्ष का नाश कर दिया है, क्रान्ति की शासकसभा को उड़ा दिया है और सारे नगर को तलवार की भीषण छाया के नीचे दबा लिया है। इस समाचार ने अनिश्चितवृत्ति राजा के हृदय रूपी पेण्डुलम को एक ठिकाने लगा दिया। अपने सारे साहस को इकट्ठा करके उसने पुराने मन्त्रिमण्डल को पदच्युत कर दिया और काउण्ट ब्रान्डन्बर्ग को, जो राजपक्ष का एक स्तम्भ था, प्रधान मन्त्री नियत कर दिया। साथ ही प्रतिनिधिसभा को बर्लिन से बाहिर ब्रान्डन्बर्ग भेज दिया गया, और क्योंकि वहां पूरा कोरम न हो सका, इस लिये सभा विसर्जन कर दी गई।

राजा नये मन्त्रिदल के सभासदों को चुनने लगा तो बिसमार्क का नाम आना स्वाभाविक था। कौन ऐसा राजभक्त था, जिस की राजभक्ति बिसमार्क से बढ़ी चढ़ी हो। वही मनुष्य था, जो सर्वसाधारण की आंधी की परवा न करके चट्टान की तरह अपने राज-विश्वास पर डटा रहा, वही एक वीर था जिसने गालियां खाईं, कुवाच्य सहे, किन्तु अपने निश्चय को नहीं छोड़ा। एक अधिकारी ने उसका नाम राजा के पास प्रस्ताव करके भेज दिया। राजा ने उसके एक ओर जो शब्द लिखे वे बिसमार्क के चरित को खूब सूचित करते हैं। राजा ने लिखा—'लहू से भरा हुआ जोशीला है-वह अभी नहीं, पीछे काम आयगा' सचमुच बिसमार्क का जोश, उसकी कठोर जिव्हा, और न दबने वाला स्वभाव एक जांचने वाले के दिल पर यही असर डालता था। कहते हैं, एक बार किसी राजमन्त्री से बिसमार्क बात चीत कर रहा था। उस राजमन्त्री ने आस्ट्रिया की सरकार के एक कार्य का वर्णन करते हुए कहा कि 'उस सरकार ने राबर्ट ब्लूम नाम के भड़काने वाले वक्ता को गोली से मरवा कर अच्छा नहीं किया।' राजमन्त्री की

राय थी कि ऐसा करना राजनीतिक अपराध में शामिल है। बिस्मार्क का कथन उसके योग्य था। उसने कहा कि 'नहीं, तुम्हारा विचार ठीक नहीं। जब मेरा दुश्मन मेरे हाथ में हो, तो मुझे उचित है कि उसका सर्वनाश कर दूं'।

एक और समय बिस्मार्क एक ऐसे सज्जन से बात चीत कर रहा था, जो प्रतिनिधिसभा में उसका प्रतिद्वन्द्वी था। वह दूसरे दल के नेताओं में से एक था। दोनों में मित्रता की बातें होने लगीं। उस दूसरे प्रतिनिधि ने कहा कि 'चलो भाई, हम एक ठहराव करलें। यदि तुम्हारा दल शक्तिशाली हो जाय तो मैं फांसी से छोड़ दिया जाऊं, और यदि हमारा दल मुख्य हो जाय तो तुम्हें न मारा जाय।' बिस्मार्क का कथन सुनने योग्य था। उसने कहा "यह ठहराव नहीं हो सकता। क्योंकि यदि तुम्हारी पार्टी का विजय हो गया तो फिर मेरे लिये जीना व्यर्थ है। इस लिये फांसियां तो ज़रूर मिलेंगी, किन्तु हां, फांसी की रस्सी तक शिष्टता का वर्ताव होना चाहिये।" उसकी भाषा में ख़ून की बू भरी रहती थी। एक वार सभा के प्रधान काउण्टश्वरिन ने, जिसके विचार प्रजापक्ष की ओर झुकते थे, खिझ कर बिस्मार्क से पूछा कि 'तुम्हें मुझ से क्या शिकायत है' बिस्मार्क ने उत्तर दिया कि 'यही कि तुम आज से पहले ही यमलोक को क्यों नहीं पहुंचा दिये गये'।

बिस्मार्क की जिव्हा बहुत तीव्र थी। विशेषतया इस समय, क्योंकि वह क्रान्ति से बहुत जला हुआ था और क्रान्ति की आग को दूसरे प्रकार की आग से ही बुझाना सम्भव समझता था। उसका सारा भावी जीवन इस बात में साक्षी है, कि उस के इस समय के शब्द उसके चरित को ठीक २ चित्रित नहीं करते। वह पीछे से, उस समय के कठोर भाषणों पर प्रायः पछताया करता था।

प्रजा की प्रतिनिधिसभा को इस प्रकार उड़ा कर राजा ने अपनी ही इच्छा के अनुसार एक और प्रशियन राजसभा की घोषणा दे दी। उस का संगठन भी उस ने अपनी इच्छा के अनुकूल ही बनाया। उस के द्वारा यद्यपि प्रजा को कुछ अधिकार दिये गये थे, तथापि यत्न ऐसा किया गया था जिस से गर्म

दल बहुत ज़ोर न पकड़ने पावे। किन्तु हुआ कुछ और ही। इस नई सभा में भी गर्मदल का काफ़ी बल रहा। बिस्मार्क भी इस सभा में प्रतिनिधि बन कर आया था। अनेक विषयों पर वाद विवाद हुआ। आख़िर झगड़ा आकर इस विषय पर बढ़ा कि जर्मनी के राज्यकार्य पर प्रशियनराजसभा द्वारा प्रजाका कोई अधिकार या दबाव हो या नहीं? सभा ने इस प्रकार के दबाव पर आग्रह किया, फल यह हुआ कि राजा की ओर से यह राजसभा भी विसर्जित कर दी गई।

अगस्त में राजा की घोषणा से दूसरी सभा फिर बुलाई गई। इस में राजा की इच्छा पूर्ण हुई। प्रजा का पक्ष निर्बल हो गया और राजपक्ष का प्राबल्य होगया। बिस्मार्क इस में भी प्रतिनिधिरूप से विद्यमान था। इस सभा ने बड़े २ आवश्यक प्रश्नों पर विचार किया और इसी में बिस्मार्क ने अपने भावी महत्त्व के पहले चिन्ह दिखाये। इस सभा में कौन २ से प्रस्ताव पास हुए, या किस २ प्रश्न पर विचार हुआ, इस की चर्चा करना यहां अप्रासंगिक होगा। इस लिये इस सभा की कार्यवाही को छोड़ कर हम अगले परिच्छेद में जर्मनसाम्राज्य की पुनः स्थापना की कहानी कहेंगे।



चौथा परिच्छेद

जर्मन साम्राज्य की समस्या

जर्मनी की हलचल एक दुधारी तलवार के समान थी। एक ओर वह देश की भिन्नता को काटती थी, तो दूसरी ओर वह पराधीनता की जड़ पर कुठार लगाना चाहती थी। स्वाधीनता और एकता के भाव थे, जिन के लिये जर्मन लोग यत्न कर रहे थे। इन दोनों भावों की बढ़ती हुई गर्मी को १८४८ की फ्रेंचक्रांति ने जलती हुई आग में परिणत कर दिया था। वह आग किस प्रकार भड़की, किस प्रकार उस की ज्वालाओं ने राजमहलों तक अपनी लपट फैलाई, और फिर किस प्रकार समय के प्रभाव से वह शिथिल होगई, और राजा की सैन्यशक्ति ने उस के खिलते हुए कुड्मल को मुर्झा दिया, इस का वृत्तान्त पहिले परिच्छेदों में आचुका है। स्वाधीनता के लिये जो भाव उत्पन्न हुआ था, वह भी दो रूपों में विभक्त था। प्रशिया के ही क्यों, सारी जर्मनी के निवासी अपने २ देश में अधिकारों की स्वाधीनता चाहते थे। वे चाहते थे कि उन के देशों के शासन में प्रजा की आवाज़ भी सुनी जाय। केवल राजा की इच्छा से राज्य न हुआ करे, प्रजा के प्रतिनिधियों की सलाह भी ली जाया करे। यह अपने २ देश के अंदर घरेलू स्वाधीनता का भाव था, जो फ्रांस की राज्यक्रान्ति की कहानी सुनने वाले नवयुवकों के हृदयों में उद्दीप्त हो रहा था।

इस घरेलू स्वाधीनता के भाव के साथ एक और भी भाव था और वह जर्मन स्वाधीनता का था। जर्मनी एक हो, जर्मनी के भिन्न २ देश आपस में एक हों, और कोई अन्य शक्ति उन पर आक्रमण न कर सके, गला घूंटकर उन से कुछ न करा सके। जर्मनी एक हो, स्वाधीन हो, आस्ट्रिया का नीतिदण्ड उस के सिर पर न रहे। जर्मनी के नवयुवकों का एक बड़ा भारी दल था, जो आस्ट्रिया आदि अन्य देशों के दबाव को अपने लिये राष्ट्रीय अपमान समझता था। हमने देख लिया कि किस प्रकार पहले ढंग की घरेलू स्वाधीनता ने प्रशिया में चार दिन की चांदनी देखी, और फिर गहरे अंधेरे में अपना मुंह

छुपा लिया। इस परिच्छेद में हम अन्य देशों की डाली हुई बेड़ी को काटने के यत्न की कथा कहेंगे, और देखेंगे कि जर्मनी के सुपुतों ने किस प्रकार अपनी जातीय नाव किनारे तक पहुंचाई, और नेताओं की शिथिलता से किस प्रकार वह पहले से भी अधिक भयावनी मंझधार में जा पड़ी।

जर्मनी को एक करने और आस्ट्रिया के पंजे से निकालने का उद्यम करने वाले देशों में प्रधान प्रशिया था। वही राष्ट्रीय जागृति का नेता था। उस में एक उदार दल था, जो जर्मनी और फ्रांस के दृष्टान्त सामने रखकर व्याख्यान रूपी तीर चलाने में सिद्धहस्त था। किन्तु सारा जर्मनी एक पक्ष का नहीं था। उस में भी तीन दल थे जो एक दूसरे यत्नों को विफल करने में कोई कसर न छोड़ते थे। उन्हीं दलों के परस्पर विरोध का फल था कि जर्मन एकता और जर्मन स्वाधीनता का अंकुर उगता था और उगने के साथ ही मुरझा जाता था। उन तीन दलों में से, सब से थोड़ा किंतु सब से अधिक तीव्र और प्रभावशाली दल उन गर्म लोगों का था, जो एक दम सारे जर्मनी देश को एक प्रजातंत्र राज्य में परिवर्त्तित कर देना राजनीतिक बुद्धिमत्ता की पराकाष्ठा समझते थे। फ्रेंचविचारकों के ग्रन्थ इन लोगों के वेद थे, और उन के आदर्श पिम, हैम्डन, मारा और रौबस्पेयर थे। उन्हीं के वाक्य उन के लिये नैत्यिक संध्या के समान थे। उनका कार्यक्रम यह था कि जर्मनी के सब देशों के राजाओं को एक ही सायंकाल गद्दियों से उतार दिया जाय और दूसरे दिन प्रातः काल प्रजातन्त्र शासन की आघोषणा कर दी जाय।

दूसरी ओर एक दल था, जो राष्ट्रीय लहर को देश के लिये घातक समझता था। उसकी सम्मति थी, कि जर्मनी का भला इसी में है कि उसके वर्तमान राजच्छत्र शोभायमान बने रहें, उनकी शक्ति को कम न किया जाय। दूसरे देशों के दृष्टान्तों को वे हानिकारक समझते थे। हमारे चरित का नायक प्रिंस-बिस्मार्क उस दल के मुखियाओं में से एक था। वह जर्मनी की बढ़ती चाहता था, किन्तु जर्मनी से पहले वह प्रशिया को स्थान देता था। उसकी सम्मति थी कि जर्मनी में यदि कोई रक्षा योग्य वस्तु है, तो यह प्रशिया की राज्यसंस्था है। हर एक प्रशिया के निवासी का कर्तव्य है कि सब से पहले वह प्रशिया की

रक्षा करे, उसके राज्य को दृढ़ करे, और सम्मिलित जर्मनी के सपने कुछ समय के लिये छोड़दे। अन्य देशों के दृष्टान्तों को वह घृणा की दृष्टि से देखा करता था। वह कहा करता था कि हरएक देश का अपना २ राज्यसंगठन भिन्न है, एक दूसरे के दृष्टान्तमात्र से भलाई बुराई नहीं सोची जा सकती। जैसे एक गोल गेंद पर चौकोना खोल ठीक नहीं बैठता, इसी प्रकार एक जाति पर दूसरी जाति के इतिहास का ढकना ठीक नहीं बिठाया जा सकता।

केवल इतनाही नहीं। जैसे पहले आचुका है, प्रशिया में राजशक्ति के कम होने से वह बहुत डरता था। वह चाहता था कि प्रशिया का राजमुकुट सदा चमकता रहे, न प्रजातन्त्रशासन द्वारा उसकी जोत को कम किया जाय, और न जर्मनी के नये राजमुकुट को घड़ने के लिये ही उसे पिघलाया जाय।

तीसरा नर्मदल था, जो इन दोनों के बीचों बीच रहता था। उस दल का उद्देश्य वही था, जो पहले दल का था। वह भी जर्मनी में एकता और स्वाधीनता लाना चाहता था, किन्तु धीरे धीरे। लड़ाई न हो, दंगा न हो, और रुधिर की नदियां न बहें और कार्य सिद्ध होजाय। सारांश यह कि सांप मरजाय और लठिया न टूटे। क्रान्ति पक्ष वालों के तिन रंगी झण्डे से जहां यह दल डरता था, वहां साथ ही बिस्मार्क की लहू भरी बातों से भी उसे कँपकँपी छुटती थी।

बिस्मार्क स्वभाव से ही गर्म था, नर्मदल में रहना उसके लिये सम्भव न था। वह इस समय क्रान्ति का बड़ा भारी विरोधी था। साथ ही वह प्रशिया की राजसत्ता के कम होने के भी पक्ष में नहीं था। जर्मनी के एक होने के विषय में उसकी राय स्पष्ट थी। प्रशिया अपनी सत्ता को गँवाकर जर्मनी में लीन न होजाय, प्रत्युत सारे देशों को अपने पीछे लगाकर उनका नेता बने, और उसकी छत्रच्छाया के नीचे जर्मनी एक हो। ये सम्मतियां थीं जिन्हें वह इस समय निःसंकोच कहता था, और यह मानना पड़ेगा कि मुख्य सिद्धान्तों के विषय में उसकी राय पीछे भी यही रही। साधनों के विषय में उसकी सम्मतियां प्रायः बदलती रहती थीं, और अवस्थाओं के अनुसार न चलने वाला मनुष्य राजनीतिज्ञ कहा भी नहीं सकता। साधन झण्डे के कपड़े के समान हैं, जो वायु के झोंके के साथ

बदलते रहते हैं। साधन सचाई से गिरे हुए न हों, इतना पर्याप्त है, उनके बदलते रहने में बुराई नहीं। मुख्य सम्मतियों में बिस्मार्क सर्वदा स्थिर रहा। उसके कई चरित लेखक उसके इस समय के और पीछे के भाषणों तथा सम्मतियों में भेद दिखाया करते हैं, किन्तु वे सब भेद अवान्तर सिद्धान्तों में हैं, मुख्य सिद्धान्तों में नहीं। बिस्मार्क जैसा एकही विचारकेन्द्र के चारोंओर घूमने वाला स्थायी राजनीतिज्ञ शायद ही किसी देश के इतिहास में मिले।

आगे हम जिन घटनाओं का वर्णन करते हैं, बिस्मार्क की सम्मतियों वाला मनुष्य उसमें क्या व्यवहार कर सकता था, यह विस्तारपूर्वक कहने की आवश्यकता नहीं। वह अपने पक्ष में दृढ़ था, और उसके पुष्ट करने में किसी प्रकार की न्यूनता न रहने देता था, यह उसका स्वभाव था।

जर्मनी को एक करने और सारी जर्मनी का एक राज्य संगठन बनाने के लिये १८४८ से ही एक सभा फ्रैंकफोर्ट में विचार कर रही थी। इस सभा में जर्मनी के सब देशों के प्रतिनिधि विचारार्थ उपस्थित थे। सालभर विचार होता रहा। ऊपर कहे हुए तीनों दल आपस में ख़ूब लड़ते झगड़ते और गुत्थम गुत्था होते रहे; सभा में बहुत अधिक भर्ती विद्यालयों के महोपाध्याओं, सम्पादकों और व्याख्याताओं की थी। ये लोग बहुत क्रियात्मक मन के नहीं होते, इनके दिमाग़ में कल्पना और युक्ति का राज्य अधिक रहता है। जिस स्थान पर युक्ति और कल्पना के घोड़े खुली घुड़ दौड़ करें, वहां किसी परिणाम पर पहुंचना कठिन होता है। इस कारण से ही विचार के कार्य में काफ़ी विलम्ब होता जाता था, तीनों दलों के विरोध ने उस विलम्ब को और भी लम्बा कर दिया। किंतु इतने ही पर बस नहीं थी। कार्य में रुकावट डालने वाले और देर लगाने वाले दो और भी कारण थे जिनको भुलाने से जर्मन साम्राज्य की कहानी ठीक २ समझ में नहीं आ सकती।

सब से बड़ा नाला, जो जर्मन एकता के रास्ते को काटता था, आस्ट्रिया था। आस्ट्रिया का इस समय तक जर्मनी के कई देशों पर बहुत गहरा प्रभाव था। जर्मनी को एक करते हुए आस्ट्रिया के साथ दो प्रकार का ही व्यवहार हो सकता था, या तो आस्ट्रिया को बीच में रखा जाय, और या निकाल दिया जाय। अपने प्रभाव को कम होने देना, और नये मेल से जुदे रखे जाना, आस्ट्रिया से

सहन न हो सकता था। उसे अन्दर लेने में भी दो हालतें हो सकती थीं, या तो उसे ही सारी जर्मनी का मुखिया बनाया जाय और या उसे गौण स्थान दिया जाय। इन में से भी दूसरी बात आस्ट्रिया को स्वीकार न हो सकती थी। तब एक ही चारा था, कि उसे सारे देश में मुख्य रक्खा जाय। यह कहना पुनरुक्तिमात्र होगा कि और सारे देश इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते थे। इसी लिये आस्ट्रिया जर्मनी की एकता में निरन्तर बाधक था। इस सभा की कार्यवाही को भी उस के विरोध ने बहुत ही धीमा करदिया।

एकता के कार्य में दूसरा बड़ा विघ्न, जर्मनी के छोटे राज्यों में परस्पर अविश्वास था। उन्हें एक दूसरे पर भरोसा नहीं था। सब की भलाई के लिये कोई अपने अधिकारों को कम कराने के लिये तय्यार न होता था। क्या कभी दो ऐसी वस्तुएं परस्पर मिल सकती हैं, जो अपनी सत्ता में कुछ न्यूनता न आने देना चाहें। शक्कर दूध को मीठा कर देती है, किन्तु उससे पूर्व अपनी सत्ता को खो बैठती है। इस अविश्वास ने भी जर्मनी के राष्ट्रीय प्रवाह को बहुत शिथिल कर रखा था।

१८४९ में इस सभा ने नई जर्मनी का राज्यसंगठन तय्यार कर लिया। उस संगठन के द्वारा सारे देशों को एक कर दिया गया और उनके ऊपर प्रशिया के राजा को सम्राट् की पदवी दी गई। सभा की ओर से एक डेपुटेशन, सम्राट् पद को स्वीकार करने की प्रार्थना के साथ, प्रशिया के राजा के पास भेजा गया। क्षण भर के लिये जर्मनी का भाग्य दोला पर हिलता हुआ दिखाई देने लगा। प्रशिया का राजा यदि सभा के दिये हुए इस पद को स्वीकार करलेता, तो नहीं कह सकते, जर्मनी का इतिहास किस प्रकार का बनता, किन्तु उसने स्पष्ट शब्दों में इन्कार कर दिया। उसने कहा कि वह प्रजा के या एक सभा के देने से सम्राट् पद को स्वीकार नहीं करेगा, इस स्वीकृति के लिये जर्मनी के छोटे २ सब सिंहासनस्थ राजाओं की अनुमति चाहिये। सभा का सालभर का श्रम व्यर्थ गया। बिस्मार्क और उसके साथियों की सलाह से प्रशिया के राजा ने उसके प्रस्ताव को रद्दी कर दिया। राजसभा में जब यह विषय पेश हुआ तो ख़ूब गर्मागर्म विवाद हुआ। राष्ट्रीय दलने राजा को सलाह देनी चाही कि वह सम्राट् पद को स्वीकार कर ले, बिस्मार्क और उसके साथियों ने इस प्रस्ताव

का सख्त विरोध किया। जीत बिस्मार्क-दल की रही। क्रान्ति का बचा खुचा काम भी नष्ट होता दीखने लगा। जर्मनी का भाग्यपक्षी फिर एक बार अनिश्चय की हिलती हुई डाल पर जा बैठा।

किन्तु प्रशिया के राजा ने निषेध करके शान्ति धारण नहीं करली। अपने कहने के अनुसार उसने जर्मनी के अन्य छोटे २ राजाओं के पास मेल और एकता के प्रस्ताव भेजे। सारे राजाओं में से केवल छब्बीस ने इस मेल और उन्नति के पैग़ाम का उत्तर दिया। शेष देशों के राजाओं में से कई तो आस्ट्रिया के दबाव से रुक गये और हनोवर, सैक्सनी और बैवेरिया आदि देश टालमटोल करते रहे। केवल छब्बीस राजाओं को साथ लेकर प्रशिया ने जर्मनी की एकता के लिये यर्फर्ट में एक महासभा बुलाई, जिसमें इन्हीं राजाओं के प्रतिनिधि उपस्थित थे। प्रशिया के प्रतिनिधिओं में से बिस्मार्क भी था। उसने इस सभा की कार्यवाही में विशेष भाग नहीं लिया, क्योंकि वह अभी कम उम्र था। वह केवल दर्शक रहा। इस सभा ने भी कई महीनों तक विचार किया और जर्मनी का एक संगठन तय्यार किया। वह संगठन पूरा करके सब मिले हुए राज्यों की राजसभाओं के पास भी भेजा जाने लगा।

ये सब कार्य हो रहे थे, और आस्ट्रिया अपनी श्येनसमान चक्षुओं से उन्हें देख रहा था। वह केवल मौके की तलाश में था। यहां पर आकर मामला अटक गया। एकता के कार्य में आस्ट्रिया ने इस समय रुकावट डाली। उस की मुख्य आशंका यही थी कि इस मेल के विषय में उस से पूछा क्यों नहीं गया? उसने प्रशिया की २६ रियासतों के विरोध में पुरानी डायट के सभासदों को फ्रैंकफोर्ट में निमन्त्रित किया और घोषणा देदी कि वह जर्मनी के पुराने संगठन की रक्षा करेगा, जो शक्ति इस रक्षा के कार्य में उसका विरोध करेगी, उसे अपना शत्रु समझेगा। यह मध्यान्ह के आकाशमण्डल की तरह स्पष्ट हो गया कि जर्मनी और आस्ट्रिया में दुश्मनी हो गई है। दोनों देश बहुत दिनों तक अपनी बात पर डटे रहे। रैडोविज़, जो इस समय प्रशिया का प्रधान सचिव था, और जिस के दिमाग़ से एकता की नई कार्यवाही निकल रही थी, अपनी बात पर जमे रहने के पक्ष में था। वह कहता था कि इस समय एकता के लिये प्रशिया को जान पर खेल जाना चाहिये।

कुछ दिन तक तो दोनों पहलवान पृथ्वी के ऊपर खड़े रहे, कोई भी न गिरा। बातचीत की तेज़ी ने सेनाओं में भी गर्मी पैदा करदी। कहीं कहीं प्रशिया और आस्ट्रिया की सेनाओं में परस्पर गोलियां भी छूट गईं। बर्लिन में आस्ट्रिया का जो राजदूत था, उसे प्रशिया से चले जाने की आज्ञा भी वीना से प्राप्त होगई। यह अवस्था थी जब घुन का खाया हुआ शहतीर बीच में से टूट गया। आस्ट्रिया की सेना युद्ध के लिये तैयार थी, प्रशिया की तैयार नहीं थी। आस्ट्रिया के राजनीतिज्ञ जानते थे, कि वे क्या कर रहे हैं, प्रशिया के राजनीतिज्ञों को इस का ज्ञान नहीं था। विशेषतया प्रशिया का राजा तो सदा दोमना रहता था। आस्ट्रिया ने पुराने संगठन की रक्षा का ढकोंसला घड़के, अपने आप को पुराने विचारों का रक्षक बतला कर लोगों को और रियासतों को अपना पिछवा बना लिया। प्रशिया इस समय उदार दल के नेता की अवस्थिति में था। बिस्मार्क और उस के दल के लोग प्रशिया में भी अनेक थे, जो अपने देश की उदार नीति से भय खाते थे, और आस्ट्रिया के साथ सहमति रखते थे।

दोनों ओर रणचण्डी की दुन्दुभि वजने को तैयार थी कि प्रशिया के राजा का दिल गिर गया। उस ने अपने सेनापति से सलाह ली तो उत्तर मिला कि सेना लड़ाई के लिये तय्यार नहीं है। अन्त को राजा ने अपनी साल भर की कमाई को आस्ट्रिया के हवाले कर दिया। जो राजमंत्री इस एकता के कार्य में अग्रसर हो रहे थे, उन्हें त्यागपत्र देना पड़ा, अनुदार दल के नेता को प्रधान मंत्री का स्थान दिया गया। बिस्मार्क के विचार इस विषय में ऐसे पक्के थे कि जब उस ने उदार दल के नेता के त्यागपत्र की बात सुनी तो वह अपनी मेज़ के चारों ओर खुशी से तीन बार नाचा।

प्रशिया ने नीतिकसंसार की दृष्टि में पूरा २ नीचा देख लिया। उस की बड़ी भारी बेइज़्ज़ती हुई। सब ने जान लिया कि वह लड़ाई से डर गया। आस्ट्रिया की म्यान से बाहिर होती हुई तलवार ने उस की हिम्मत चुराली। जो कुछ कसर थी, उस के पूरा करने के लिये, प्रशिया का नया प्रधानसचिव, आस्ट्रिया के प्रधानमंत्री से मिलने (Olmulz) औल्मुज़ स्थान पर गया

और आस्ट्रिया के साम्हने नाक से सात लकीरें खेंच आया। जितने विषयों पर विवाद था, सब में आस्ट्रिया की जीत रही। सारे संसार ने जान लिया कि अभी जर्मनी स्वाधीन होने के योग्य नहीं है। जहां आस्ट्रिया की शान की हद न रही, वहां अपमान से प्रशिया के लोगों का सिर झुक गया। प्रशियन राजसभा में जब यह समाचार पहुंचा तो धिक्कार का तूफ़ान उमड़ पड़ा सरकार की शतमुख से निन्दा होने लगी। महान् फ्रेडरिक के देशनिवासियों का रुधिर जोश मारने लगा।

बिस्मार्क उस समय सरकार की कार्यवाही के पक्ष में था। उस की राय थी कि प्रशिया को 'जर्मनी' 'जर्मनी' का शोर मचाने वालों के पीछे लग कर नरहत्या कराने की आवश्यकता नहीं। राजसभा में उस ने सरकार के कार्य का खूब समर्थन किया। मनुष्यबुद्धि की विलक्षणता देखिये, जब बिस्मार्क सरकार के इस कार्य का समर्थन कर रहा था, किसे ज्ञात था कि कुछ वर्ष पीछे यही बिस्मार्क, ऐसे ही निमित्त पर, आस्ट्रिया के दांत खट्टे करेगा और योरप के सामने जर्मनी के एकमात्र नेता के रूप में खड़ा होगा। किन्तु जगत् परस्परविरुद्ध बातों का अद्भुतालय है। भेद केवल इतना है कि परस्परविरोध तभी तक रहता है जब तक हम सारी अवस्थाओं पर विचार न करें। प्रशिया इस समय क्यों हारा? क्योंकि उस की सेना लड़ाई के लिये तैयार नहीं थी। पीछे से वह क्यों जीता? क्योंकि उस समय उस की सेना योरप की सब सेनाओं में पहले दर्जे की थी, और बिस्मार्क की दृढ़ इच्छा शक्ति उसे कार्य में लगाने के लिये विद्यमान थी।

क्रान्ति का बादल जर्मनी में उमड़ा और फट गया, जर्मनी की रियासतों को परस्पर बांधने के लिये प्रशिया ने सोने की जंजीरें बनाईं, और वे छिन गईं, राष्ट्रीयता की लहर आई और आस्ट्रिया के पुराने राजदुर्ग से टक्कर खाकर फट गई-चलिये पाठक, देखें आगे क्या होता है।

पांचवाँ परिच्छेद

राजप्रतिनिधि की दशा में बिस्मार्क

जिन ग्यारह वर्षों का इतिहास हम इस परिच्छेद में देने लगे हैं, वे प्रशिया के लिये अपमान और पराजय के वर्ष थे। औलमुज़ की सन्धि के पीछे अपमान और पराजय ने प्रशिया के द्वार पर डेरा जमाया था। उसका प्रतीकार होना आवश्यक था, किन्तु सम्भव नहीं था। यह सम्भव नहीं था, जब तक कोई ऐसा पुरुष प्रशिया का शासन अपने हाथों में न ले, जिसके साम्हने विएना को भी सिर झुकाना पड़े और जो दैवरूपी पशु को नकेल डाल कर सीधे रास्ते लगादे। वह पुरुष ग्यारह सालों तक किसी और ही जगह की हवा खारहा था, और अपने आप को भावी महासंग्राम के लिये तय्यार कर रहा था। औलमुज़ की सन्धि के पीछे बिस्मार्क को प्रशिया के राजा की ओर से राजप्रतिनिधि बनाकर फ्रैंकफोर्ट भेजा गया। प्रतिनिधिसभा का अदमनीय वक्ता, राजदूतों के अन्दर नीतियुद्ध करने के लिये भेज दिया गया।

फ्रैंकफोर्ट की डायट का वृत्तान्त पाठकगण पहले पढ़ चुके हैं। इस सभा में जर्मनी की लगभग तीस रियासतों के १७ प्रतिनिधि थे, और उन सब के ऊपर आस्ट्रिया का प्रतिनिधि समझा जाता था। यह सभा बनाई तो इस लिये गई थी कि इससे जर्मनी की रियासतें जहां आपस में न लड़ें, वहां साथ ही शत्रुओं से अपने अधिकारों की रक्षा करसकें। यह डायट नाम की सभा जर्मनी के मिलने का साधन समझी जाती थी। किन्तु वहां था क्या? पृथ्वी भर की धोखे-बाज़ियां और राग द्वेष उस स्थान में भरे पड़े थे। हर एक राजप्रतिनिधि दूसरे सब प्रतिनिधियों को धोखेबाज़ समझता था, इसी लिये स्वयं भी धोखा करने में संकोच न करता था, और यह कहना असत्य नहीं है कि सबके समझने में कोई अशुद्धि न थी। ऐसी सभा में जर्मनी के हित की कोई बात होसके, यह सपने में भी विचार करना अशुद्ध होगा। हां, हरएक काम में अटकाव अवश्य पड़ जाता था। किसी बात का निश्चय करना ही सम्भव न था, और यदि भूल से

किसी बात का निर्णय होजाय तो डायट के पास कोई साधन नहीं था कि वह अपनी इच्छा को पूर्ण करासके। कोई सेना या शक्ति नहीं थी, जो उसकी आज्ञा का पालन करा सके। उस समय सारे योरप में जर्मन डायट-शब्द और निष्प्रयोजन शब्द समानार्थक समझे जाते थे।

ऐसी सभा थी, जिसमें प्रशिया की ओर से राजप्रतिनिधि बनाकर बिस्मार्क को रवाना किया गया। बिस्मार्क ने वहां जाकर, अपने आपको विचित्र जल वायु में पाया। अभी तक वह केवल प्रतिनिधिसभाओं में ही बोलना जानता था, राजदूतों और सरकारी कर्मचारियों की चालाकियों का उसे कुछ पता नहीं था। मुँह पर अमृत के साथ दिल में विष कैसे रखी जाती है? सुहावनी मुसक्यान के नीचे मृत्यु के पंजे कैसे छुपाये जाते हैं? शत्रु के मित्र बनकर, कहारों और चपरासियों को बरगला कर, उस के गुप्त काग़ज़ात कैसे पाये जाते हैं? इन बातों का ज्ञान उसे नहीं था। वह अभी नहीं जानताथा कि कमल के फूल में भी कांटे होते हैं, और वे सांप ही बहुत ज़हरीला काटते हैं, जो चन्दन के तले रहते हों।

जब बिस्मार्क राजप्रतिनिधियों की सभा में गया और १८५१ में प्रशिया का मुख्य प्रतिनिधि बना, तो उसे उसकी टेढ़ी चालों का पता लगा। वह स्वभावतः स्पष्ट वक्ता और सीधा सोचने वाला मनुष्य था, टेढ़ी चालों से उसे बड़ी घृणा उत्पन्न हुई। आने से पहले जो उसका उत्साह था, उसने अपना रूप परिवर्तन करलिया। केवल कूटनीतियां ही उसके दिलको दुखाने के लिये काफ़ी थीं, तिसपर उसके विचारों को एक और बड़ा प्रबल धक्का लगा, जिस ने उसके भावी जीवन पर भी स्थायी प्रभाव डाला।

जब प्रशिया के राजा ने जर्मनी की सब रियासतों को एक करने के लिये बीड़ा उठाया था, तब आस्ट्रियाने उस कार्य के रास्ते में विघ्न डाले, लड़ाई की धमकी दी और आख़िर प्रशिया को नीचा दिखाया। बर्लिन में उस समय दो दल थे। एक दल, जो उदारनाम से पुकारा जाता था, आस्ट्रिया के विरुद्ध था। उस दल की राय थी, कि प्रशिया के लिये लड़कर मरजाना अच्छा है किन्तु अपमान सहना और सदा पड़ोसी की उंगली पर नाचना अच्छा नहीं। दूसरा दल उन लोगों का था जो क्रान्ति से और उदार विचारों से डरते हुए

आस्ट्रिया की शरण लेने में भी पाप नहीं समझते थे। उनकी राय थी कि यदि इस समय प्रशिया सनातन विचारों वाले आस्ट्रिया से लड़ेगा, तो उसे उदार दल के साथ मिल कर स्वाधीनता और एकता का डंका बजाना पड़ेगा। उदार दल के विचारों से उन्हें ऐसा डर था, जैसा बच्चों को भूत प्रेत से हुआ करता है। वे उदार दल के पर्यंक में पड़ने की अपेक्षा, आस्ट्रिया की गोद में जाना अधिक अच्छा समझते थे। बिस्मार्क उसी दल का सरगर्म सभासद् था, और उन्हीं विचारों को लेकर वह आस्ट्रिया से मेलजोल का सम्बन्ध रखने के लिये फ्रैंकफोर्ट को भेजागया था।

वहां आकर उसने और ही दृश्य देखा। आस्ट्रिया के प्रतिनिधि का नाम थून था। उसकी चाल ढाल और उसका व्यवहार यद्यपि सज्जनोचित थे तो भी उसके अन्दर छुपे हुए भावों को समझ लेना बिस्मार्क जैसे तीव्रदर्शी के लिये कठिन नहीं था। आस्ट्रिया की यह इच्छा नहीं थी कि प्रशिया को अपने बराबर का समझे या उसके साथ सन्धि रखे। उसने प्रशिया को नीतिक्षेत्र में नीचा दिखा कर गिरा-दिया था, और अब वह उसे उसी दशा में रखना चाहता था। आस्ट्रिया के प्रतिनिधियों का और विशेषतया डायट के सभापति का हर एक बात में यही यत्न रहता था कि वे प्रशिया के प्रस्तावों को रद्द करें, डायट में उसे बात २ में नीचा दिखायें, और अन्य रियासतों के प्रतिनिधियों के सामने प्रशिया के राजदूतों को वेइज्जत करें। अन्य किसी रियासत के प्रतिनिधि को, वे बूट के तले की धूल के समान भी नहीं समझते थे।

बिस्मार्क ने आकर थोड़े ही दिनों में यह सब कुछ ताड़ लिया। उसने समझ लिया कि प्रशिया यदि जीना चाहता है तो उसे आस्ट्रिया का साम्हना करना पड़ेगा। डायट में आने से पहले वह आस्ट्रिया का परममित्र था, थोड़े ही महीनों में दशा पलट गई और बिस्मार्क से बढ़ कर उस देश का कोई जानी दुश्मन नहीं था। सब से पहिले उसने नैत्यिक व्यवहार में नीचा दिखाना उचित समझा। डायट में आस्ट्रिया का अत्याचार इतना अधिक था कि सिवाय सभापति के और किसी को सिगार पीने का अधिकार न था बिस्मार्क से पूर्व, प्रशिया का राजप्रतिनिधि भी ऐसी हिम्मत नहीं कर सकता था।

विस्मार्क को यह समझ न आया कि आस्ट्रिया ही क्यों सब के अन्दर चौधरी बना रहे। इस गर्व का भंग करना चाहिये। अगले अधिवेशन में वह भी चुरुट ले गया। सारी सभा अपने काम में लगी हुई थी, सभापति महोदय बड़ी शान से चुरुट का धुआं उड़ा रहे थे कि विस्मार्क ने भी जेब में से चुरुट निकाल लिया। लोग अभी देखने भी न पाये थे कि विस्मार्क आगे को झुका और सभापति महोदय से चुरुट जलाने के लिये दियासलाई मांगने लगा। अनर्थ और महा अनर्थ। सभापति ने विस्मार्क की इस ढिठाई पर उस की ओर ऐसे क्रोध से देखा मानो उसे जला देगा; सारी सभा भी इस व्यवहार से दंग रह गई थी, बिस्मार्क को जलता हुआ देखने के लिये उत्सुक हो बैठी, किन्तु दैव की माया समझिये या विचित्रता का राज्य समझिये कि विस्मार्क के गम्भीर और शान्त रूप में भेद न आया। सभापति महोदय ने चुपके से दियासलाई निकाल कर विस्मार्क को देदी। बिस्मार्क ने भी अपना चुरुट जलालिया और धुएं का तांता बांध दिया। राक्षसों पर रामचन्द्र का विजय ताटकावध के साथ प्रारम्भ हुआ था और इस वज्री बिस्मार्क से आस्ट्रिया का पराजय एक चुरुट जलने से शुरू हुआ। महीनों तक आस्ट्रिया और प्रशिया के प्रतिनिधि ही चुरुट पीते रहे, और किसी को वैसा करने की हिम्मत न पड़ी।

एक बार विस्मार्क थून से मिलने गया। योरप में किसी भलेमानस को विना कोट पहिने मिलना उसका अपमान समझा जाता है। थून विस्मार्क से विना कोट पहिने ही मिलने आया, बिस्मार्क ने यह कहते हुए कि 'हां तुमने ठीक तो किया है, आज गर्मी बहुत है' अपना कोट भी उतार कर कीली पर टांग दिया।

आस्ट्रिया के प्रति विस्मार्क के इस विरोधभाव ने इन छोटी २ बातों से बढ़ कर उसकी नीति पर प्रभाव डाला। उसे निश्चय होगया कि प्रशिया को यदि किसी से डर है तो वह आस्ट्रिया से है। वह प्रशिया का स्वाभाविक शत्रु है। अपने सरकारी कागज़ात में वह बर्लिन को प्रायः यही सलाह भेजा करता था। उसकी राय थी कि रूस या फ्रांस जर्मनी के लिये मित्र हो सकते हैं, किन्तु आस्ट्रिया नहीं, इस लिये वह सदा अपनी गवर्नमेंट को इन देशों में से ही किसी के साथ मैत्री गांठने की सलाह दिया करता था,

क्रीमियन युद्ध में रूस एक ओर था और सारा बाकी योरप दूसरी ओर सारे योरप में आस्ट्रिया भी सम्मिलित था, अतः बिस्मार्क की राय थी कि प्रशिया को रूस के साथ मिलना चाहिये, योरप के साथ नहीं। उस में भी वह अच्छा यह समझता था कि प्रशिया किसी ओर भी न हो, दोनों पक्षों को दूसरे से मिलने का डर देता रहे और इस प्रकार सारे योरप की स्थिति को अपनी अंगुली पर तोल सके।

बिस्मार्क की ये सम्मतियां थीं और वह अपनी सम्मतियों को अपने पास ही नहीं रखता था। बड़े लम्बे २ चिट्ठों में उनका सन्निवेश करके अपनी सरकार के पास भेजा करता था। प्रशिया के विदेशार्थक राजसचिव को हर सप्ताह फ्रैंकफोर्ट से बिस्मार्क का एक बड़ा चिट्ठा प्राप्त हो जाता था। इस कार्य में बिस्मार्क की बराबरी शायद ही किसी राजप्रतिनिधि ने की हो। और लोग जिस कार्य को करते हुए आराम से दिन बिताना ही अपने लिये सौभाग्य का कारण समझते हैं, बिस्मार्क ने उसे बहुत फैला लिया था। रातों बैठकर वह प्रशिया की सारी राजनीति के विषय में चिट्ठे लिखता था। वे चिट्ठे ऐसे वैसे न होते थे, राजनीति का गहरा ज्ञान, जगत् की चलती हुई घटनाओं में अन्तर्दृष्टि, दृढ़ देशभक्ति, और भविष्यत् देखने की शक्ति में शायद ही उसके चिट्ठों को कोई पा सके। आजतक उनके पढ़ने से आदमी की आंखें खुलती हैं। इस समय तक भी उनकी नवीनता और स्फूर्त्ति कम नहीं हुई।

इसी प्रकार डायट में आस्ट्रिया से झगड़ते, लम्बे २ चिट्ठे लिखते और योरप की चाल ढाल की परख करते हुए बिस्मार्क के सात वर्ष व्यतीत होगये। इसी अवस्था में उसे समाचार मिला कि प्रशिया का राजा चौथा फ्रेडरिक विलियम मृत्यु-शय्या पर पड़ा है। साथ ही दूसरा समाचार यह आया कि राजाका छोटा भाई (Regent) स्थानीयशासक नियत किया गया है। बिस्मार्क को ज्ञात था कि नये शासक की सम्मतियां उसके साथ बहुत मिलती हैं। वह विचार रहा था कि देखें उसके कार्य पर नये परिवर्तन का क्या प्रभाव पड़ता है। इधर या उधर—अभी वह कुछ निश्चय नहीं करसका था कि उसे मन्त्रिदल के बदलने की खबर मिली। पिछले मन्त्रिदल के स्थान में युवराज विलियम ने नया कोमल सम्मतियों वाला मन्त्रिदल नियत किया इस मन्त्रिदल की सम्मतियां न बहुत गर्म थीं और न सर्वथा नर्म। ऐसे मन्त्रिदल के

नियत होने पर सब ही प्रसन्न थे। बिस्मार्क अभी अपनी प्रसन्नता को पूरी तरह अनुभव न कर पाया था कि उसे फ्रैंकफोर्ट से बर्लिन आने के लिये आज्ञा पहुंच गई बिस्मार्क के स्थान पर दूसरा राजप्रतिनिधि नियत किया गया, क्योंकि नया मन्त्रिदल आस्ट्रिया के साथ नई दोस्ती बांधकर कार्य शुरू करना चाहता था और बिस्मार्क अब उस देश का विख्यात शत्रु होगया था। नये राजपरिवर्तन ने बिस्मार्क का भी स्थानपरिवर्तन कर दिया।

थोड़े दिनों तक बिस्मार्क ने बर्लिन में प्रतीक्षा की। उस की इच्छा थी कि उसे रूस की राजधानी सेण्टपीटर्सबर्ग या फ्रांस की राजधानी पेरिस में राजप्रतिनिधि बनाकर भेजा जाय। इसी इच्छा के अनुकूल उसे सेण्टपीटर्सबर्ग की सर्दी में शिकार खेलने और मौजें उड़ाने भेज दिया गया। यद्यपि नौकरी की दृष्टि से फ्रैंकफोर्ट की अपेक्षा रूस की राजधानी बेहतर थी, तथापि उसके अन्दर मन्त्रिदल की नाराज़गी का चिन्ह अवश्य था। फ्रैंकफोर्ट से बिस्मार्क समय समय पर जर्मनी के साथ तथा योरप के साथ प्रशिया के सम्बन्धों के विषय में चिट्ठे भेजता रहता था, अब वह राजधानी और देश से इतना दूर चला गया था कि उसी प्रकार सम्मतियां देना उसके लिये असम्भव होगया। उसी के शब्दों में 'वह दूर सर्दी में फेंक दिया गया था।'

रूस की सर्दी और फिर निकम्मापन। बिस्मार्क वहां से जो पत्र लिखा करता था, उन में प्रायः इन्हीं बातों का वर्णन होता था। उसे निकम्मा जीवन पसन्द नहीं था अपनी सहधर्मिणी को बच्चों सहित वहां बुलवा लेने पर भी उसे पूरा २ सुख न मिला। सर्दी, बर्लिन से दूरी और उसकी अनियमित आदतों का भी उसकी सेहत पर बुरा प्रभाव पड़ता था। यद्यपि उसका शरीर बहुत पुष्ट था, तथापि जीवन के सारे नियमों के भंग को वह भी नहीं सह सकता था। वह खाता इतना था कि दूसरे दो व्यक्ति कठिनता से उतना खा सकें, जो शराब वह पीता था बहुत मद उत्पन्न करने वाली होती थी, और फिर उसकी राशि भी पर्याप्त हुआ करती थी। इस पर न सोने का नियम और न जागने का। रात भर लिखना पढ़ना और प्रातःकाल सोकर दोपहर के समय ग्यारह बारह बजे उठना तो उसका एक नियम सा होगया था। इन विचित्र आदतों का शरीर पर हानिकारक प्रभाव पड़ा, और

रूस की सर्दी ने उसे और भी बढ़ा दिया। बिस्मार्क को जोड़ों की विषमपीड़ा के साथ २ फिफड़ों की सुजावट शुरू हुई, और उसे चारपाई पर लेटना पड़ा।

यह बीमारी महीनों तक चली और उस के पहलवानी शरीर को सदा के लिये अन्दर से पोपला कर गई। उसके स्वास्थ्य की जड़ कट गई। बीमारी का प्रभाव यहीं तक नहीं रहा, वह उसके स्वभाव पर भी पड़ा। अभी तक उसका स्वभाव बड़ा गौरवपूर्ण था, बड़े से बड़े आक्षेपों पर भी वह चिढ़ता न था, दूसरे के किये हुए शब्दवारों को वह फूलों की वर्षा की तरह ले लेता था। किन्तु इस बीमारी ने उसके अन्दर बहुत चिड़चिड़ापन उत्पन्न कर दिया वह अब दूसरे के किये आक्षेपों से जल उठता था। अधिक काम आपड़ने पर वह घबरा जाता था। उसका स्वास्थ्य मुँह मोड़ता दिखलाई देता था। बिस्मार्क के पिछले जीवनभाग के वाग्युद्धों का वैज्ञानिक समाधान इसी बीमारी में ढूंढा जा सकता है।



चौथा भाग

रंगस्थली में प्रवेश



पहला परिच्छेद।

राजा और सभा में झगड़ा।

फ्रेडरिक दि ग्रेट का पाला हुआ, बढ़ाया हुआ प्रशिया बीमार पड़ा था। उसका शरीर इधर क्रान्ति से और उधर शत्रुओं से क्षत विक्षत हुआ पड़ा था। एक ऐसे वैद्य की आवश्यकता थी जो उस बीमार शरीर को उठा कर खड़ा करे। वह वैद्य उत्पन्न हो चुका था, किन्तु उसे ठीक स्थान पर, ठीक काम पर लगाने वाला कोई न था; वैद्य रोगी के सिरहाने आता था तो उसे फटकार कर फ्रैंकफोर्ट के गन्दे स्थानों में, या रूस की ठण्डी राजधानी में भेज दिया जाता था। रोगी का रक्षक अस्थिरवृत्ति और शिथिल था। वह सच्चे वैद्य को न पहिचान सकता था और न उस से उपयोग ले सकता था।

एक वर्ष तक मृत्युशय्या पर पड़े रहकर चौथे फ्रेडरिक विलियम ने देह-त्याग किया। उस का भाई विलियम, जो अभी तक केवल राज्य का रक्षक था, राजा हुआ, और उस के साथ ही प्रशिया के भाग्यों का चक्र फिरा। नया राजा उस ढंग का मनुष्य था, जिसकी प्रतीक्षा प्रशिया आधी शताब्दि से कर रहा था। यद्यपि वह स्वयं कोई बड़ा राजनीतिज्ञ न था, तथापि राजनीति को समझता था। काम करने वाले मनुष्यों को और चोट लगाने के समय को पहचानने में वह निपुण था। सब से बढ़कर वह अस्थिरवृत्ति नहीं था। वह जानता था कि उसके दिल में क्या बात है और उसपर दृढ़ रह सकता था। ऐसा मनुष्य था, जो अब प्रशिया के सिंहासन पर आया।

आते ही उसने प्रशिया को निर्बल अवस्था और नीची स्थिति से निकालने के साधनों पर विचार किया तो उस की अंगुली सेना पर पड़ी। वह स्वयं जन्म से सिपाही था, और पिछले कई वर्षों में प्रशियनसेना का सेनापति रह चुका था। उसे सेना की सब निर्बलतायें ज्ञात थीं। यदि प्रशिया की सेना बलवती होती तो उसे नैपोलियन से हार कर धक्के न खाने पड़ते, और नहीं

औल्मुज़ में जा कर उसके प्रधान मन्त्री को नाक रगड़ना पड़ता। यह विचार कर उस ने कई योग्य राजनीतिज्ञों का एक कमीशन बिठाया, जिसका कार्य सेनासुधार पर विचार करना था। इस कमीशन में मुखिया फौन 'रून' था। यह 'रून' प्रशिया के एक पुराने वंश में से था, और इसके विचार बिस्मार्क के साथ परमाणुशः मिलते थे। यह उस त्रिमूर्ति में से एक था जो आगामी बीस वर्षों में सारे योरप की काया पलट देने वाली थी।

कमीशन की रिपोर्ट शीघ्र ही तय्यार हो गई। राजा ने वह सारी रिपोर्ट अपने युद्धसचिव के साम्हने रखी और उसे राजसभा में पेश करने के लिये कहा। उस रिपोर्ट में सेना सुधार के सम्बन्ध में मुख्यतया तीन प्रस्ताव थे। (१) सब से पहले तो हर साल के नये रंगरूटों की संख्या बढ़ाने का प्रस्ताव था (२) दूसरा प्रस्ताव निश्चित सेनाओं की सेवा के वर्ष बढ़ाने के विषय में था और (३) तीसरा इसी प्रकार उनकी उपयोगिता को और भी अधिक बढ़ा देने के विषय में था। युद्धसचिव को ऐसे प्रस्ताव स्वीकृत न हुए क्योंकि उनका उठाने वाला वह स्वयं नहीं था। मनुष्य में प्रायः यह निर्बलता पाई जाती है कि यदि वह 'दो और दो चार' कहने को तय्यार हो और कोई दूसरा व्यक्ति उस से पहले कह दे तो वह 'दो और दो पांच' पर ही डट जायगा।

अस्तु। राजा ने पुराने युद्धसचिव को इस प्रकार नाक भौं सुकेड़ते देख कर पृथक् कर दिया और रून को ही युद्धसचिव बना लिया। सारे के सारे सुधार प्रस्तावों के रूप में लाये गये और राजसभा में पेश किये गये। प्रस्ताव पेश होने के समय सभा का दृश्य देखने योग्य था। देशभक्तम्मन्य सभासदों के शरीर मानों कपड़ों से निकले पड़ते थे। वे बड़े जोश में थे। सरकार सेना को क्यों बढ़ाया चाहती है? वह इस सेना से सभा का दलन करेगी। यह सेना फिर से अत्याचार का राज्य लाने के लिये बढ़ाई जारही है। इस प्रकार का कोलाहल करते हुए सभासदों ने सेनासुधार के प्रस्ताव को रद्दी की टोकरी में फेंक दिया। सेना के रखने के व्यय के लिये जो रुपया बजट में रखा गया था, वह भी केवल एक वर्ष के लिये स्वीकृत किया।

सभा के जोश या अस्वीकार की कोई परवा न करते हुए राजा और युद्धसचिव ने मिलकर सेना का सुधार आरम्भ कर दिया। सालभर में सेना का

रूप ही पलट गया । फिर राजसभा का अधिवेशन हुआ और उस में सेनासुधार के प्रस्ताव पेश हुए । सभा फिर उसी प्रकार भड़क उठी, और एक सालभर सेना रखने के लिये धन देकर सुधारों को अस्वीकृत किया । सालभर फिर राजा और युद्धसचिव मिलकर अपने विचार के अनुसार सेनासुधार में लगे रहे ।

अब तीसरा साल आया और वह अपने साथ उस अवस्था को ले आया, जहां पहुंच कर ऊंट को एक करवट बैठना ही पड़ता है । राजसभा अपनी इच्छा की इस प्रकार उपेक्षा होते देख कर क्रोध से भरी हुई थी । उसने इस साल न केवल सेनासुधार के प्रस्तावों को अनुचित ठहराया. साथ ही नये वर्ष के लिये धन भी स्वीकृत न किया । ब्यौरे में सैन्य की रक्षा के लिये जो व्यय रखा हुआ था वह काट दिया । सभा के हाथ में यही एक शस्त्र था, जो राजा या सरकार पर कोई असर डाल सकता था । रून ने सभा को धमकाते हुए यह तो कह दिया कि सेनासुधार के प्रस्ताव अब सभा में पेश न होंगे, क्योंकि उन का अधिकार स्वयं राजा को है, किन्तु धन के विषय में क्या किया जाय ? राज्य के संगठन के अनुसार, एक कौड़ी भी राजसभा की आज्ञा के विना व्यय नहीं की जा सकती थी । अब सरकार क्या करती ? यदि राजसभा का कहना मान ले तो सेनासुधार से हाथ धो बैठे । इस में राजा की इच्छा का बड़ा भारी अपमान होता था । दूसरी ओर यदि सभा की कोई परवा न की जाय तो नये साल भर सेना को कैसे रखा जाय । सारी सेना को घर भेज देने के सिवाय कोई चारा नहीं था ।

इस पेचीदा क्षण में राजा ने सारे मन्त्रिमण्डल को अपने पास बुला कर पूछा कि 'क्या तुम सब राजसभा की परवा न करते हुए मेरा साथ देने को तय्यार हो ?' मन्त्रिमण्डल के अन्दर इतनी हिम्मत नहीं थी । किसी ने भी राजा को उत्साहजनक उत्तर न दिया । एक रून था जो राजा के इस प्रस्ताव पर कटने मरने को तय्यार था । मन्त्रिमण्डल से ऐसा रूखा उत्तर पाकर राजा खड़ा हो गया और उसने कहा कि 'अब मेरे लिये इस के सिवा कोई चारा नहीं कि मैं अपना राजमुकुट अपने पुत्र के सिर पर रख दूं' यह कह कर युवराज को बुलाने के लिये उस ने घण्टी की मुट्ठी पर हाथ रखा ही था कि सारे मन्त्री खड़े हो गये । सब ने मिलकर राजा को विश्वास दिलाया कि वे उसके साथ रहेंगे, उसकी नीति की रक्षा करेंगे ।

वह समय तो टल गया, किन्तु राजा को इस मन्त्रिमण्डल पर विश्वास न रहा। सभा के पीछे उसने अपने विश्वासी मन्त्री रून को अकेले में बुला कर सलाह पूछी। रून ने छूटते ही उत्तर दिया कि इन सब मन्त्रियों को बिस्तरे बंधवा कर घर रवाना कर दीजिये और बिस्मार्क को मुख्य मन्त्री बना दीजिये, यही एक रक्षा का उपाय है। राजा, जो बिस्मार्क को राजप्रतिनिधि बना कर पहले सेण्टपीटर्स बर्ग और फिर पेरिस भेज चुका था, यह सुन कर अचम्भे में आगया और उसने कहा कि बिस्मार्क तो पेरिस में है, वह यहां कहां है। उसे यह ज्ञात न था कि इस हलचल का समाचार भेज कर रून ने बिस्मार्क को पहले ही बर्लिन में बुला छोड़ा है। रून ने उत्तर दिया कि बिस्मार्क इस समय बर्लिन में ही है, श्रीमान् उससे स्वयं इस विषय में बात चीत कर सकते हैं।

बिस्मार्क को राजा ने अपने निज स्थान पर बुलवा भेजा। जब बिस्मार्क राजा की सेवा में पहुंचा, उस के सामने एक कागज़ पड़ा था। उस कागज़ पर राजा ने अपने राज्य छोड़ने और युवराज को राजा बना देने की बात लिखी हुई थी। उस कागज़ को बिस्मार्क के सामने करते हुए राजा ने पूछा कि 'क्या तुम सारी सभा की इच्छा के विरुद्ध और विना बजट के भी राज्य का भार लेने को तय्यार हो।' क्षण भर में बिस्मार्क के क्षत्रिय रुधिर में जोश आगया और उसने दृढ़ता के साथ कहा 'हां'।

राजा ने उसी क्षण अपने राज्य छोड़ने का घोषणापत्र फाड़ डाला और बिस्मार्क को प्रशिया का प्रधानसचिव निश्चित किया। वह मन्त्रिदल का प्रधान और अन्य देशों के साथ व्यवहार करने के लिये भी सचिव बनाया गया।

इस पद पर रहते हुए किस प्रकार बिस्मार्क ने देश, राजसभा और योरप के विरुद्ध जंग किया, किस प्रकार एक चौथाई शताब्दि से कम समय में अपने देश और राजा के गौरव को सौगुना कर दिया, इसका इतिहास अगले पृष्ठों में देखिये।



दूसरा परिच्छेद ।

राजसभा के साथ जङ्ग ।

पेरिस की राजसभा पर नगरनिवासी आक्रमण करने की तय्यारी कर रहे थे । विचारसभा ने अपने सेनापति को बुलाया और रक्षा करने के लिये कहा। उत्तर मिला कि इस समय रक्षा करना असम्भव है, जो अपनी जान बचा सके बचा ले । उस समय एक युवा पुरुष को सभा में बुला कर पूछा गया कि 'क्या तुम सारे पेरिस के विरुद्ध सभा की रक्षा का भार ले सकते हो ?' कोमल स्त्रीसमान पीले होठों को हिलाते हुए उस नौनिहाल ने धीरता के साथ उत्तर दिया 'हां'। यही नवयुवा किसी दिन महान् नैपोलियन के नाम से विख्यात हुआ ।

इस समय प्रशिया में क्या दशा थी ? राष्ट्रीयता के विचार फ्रांस और इंग्लैंड से आकर प्रजा के दिलों में स्थान पा चुके थे । प्रजा राजा के तथा राज-मन्त्रियों के अधिकारों को कम करके अपने अधिकारों को बढ़ाना चाहती थी। राजा पर प्रसिद्ध प्रशियन विश्वास की मात्रा कम हो रही थी । राजसभा, जिस ने देश के प्रतिनिधि, राजकार्यों पर विचार करते थे, राजा से और मन्त्रिदल से नाराज़ थी । केवल नाराज़ ही नहीं थी, उस के दिलमें अक्षरशः फ्रांस की राज्यक्रान्ति का या इंग्लैंड की राज्यस्थिति का अनुकरण करने की लौ लग रही थी । अपनी इच्छा को न मानने वाले राजा के लिये राज्य करना असम्भव हो जाय, यही उसका यत्न था । बेचारे राजाने ऐसी आपत्ति के समय मन्त्रिदल की ओर आंखें कीं, तो उन्हें डर और आशंका से पथराये हुए पाया । उस समय एक वीर पुरुष राजा के सामने लाया जाता है । उस के सामने राजा का राजपद से त्यागपत्र पड़ा है और पीछे की ओर मुड़ कर देखता है तो फ्रेंच क्रान्ति का अनुकरण करने वाली राजसभा उसे अंगुलि से फांसी की ओर संकेत कर रही है । राजा पूछता है कि क्या तुम उस फांसी से डरते हो ? यदि डरते हो तो मेरा यह त्यागपत्र कार्यालय में लेते जाओ, यदि तुम्हें अपने शरीर की ममता नहीं तो आगे क़दम रख कर मुख्यमन्त्रिपद ग्रहण करो । महा-

पुरुष वह है, जो मृत्यु के पंजे को प्रेम का पाश समझता है। एक सच्चे महा-पुरुष की न्याईं बिस्मार्क ने मुख्यमन्त्रिपद को स्वीकार कर लिया। उस दिन सच्चे देशप्रेमी राजा और सच्चे निर्भय राजमन्त्री में वह प्रेमसूत्र बंध गया जो राजा की मृत्यु तक नहीं टूटा। सम्पत्ति और विपत्ति में, फूलों के सेज और मुर्दों के ढेर में दोनों निडर दिल मिले रहे। वह मेल जो उस समय हुआ, जर्मनी के लिये शुभ तथा मंगलमय था।

बिस्मार्क के मुख्य मंत्री बनने का समाचार प्रकाशित होते ही चारों ओर सन्नाटा छागया। सब लोग बिस्मार्क के विषय में केवल इतना जानते थे कि वह एक तीखा बोलने वाला और झटपट लड पड़ने वाला जोशीला जवान है, यह किसी के मन में भी न था कि वह राजा का मन्त्री—और फिर मुख्यमंत्री—बन सकता है। उसके मित्रोंने समझा, अब बिस्मार्क का अन्त आगया, वह स्वयं जलती हुई राजसभा की क्रोधभट्टी में कूद पड़ा। उसके शत्रु समाचारपत्रों में पूछने लगे कि 'ईश्वर का नाम लेकर यह तो बतलाओ कि यह बिस्मार्क है कौन ?' 'गुण्डा' 'नौजवान' 'सत्यानाशी' ऐसे २ नाम थे, जिन से बिस्मार्क को विशेषित किया जाने लगा। कई लोग ऐसे मनुष्य को मुख्य मन्त्री देख कर खिजे किन्तु कइयों ने घृणापूर्वक हंस कर कहा कि 'अजी देख लेंगे। लोकमत के सामने बिस्मार्क क्या उसके बड़े भी आयं तो पिस जायंगे,।

राजमन्त्री होते ही बिस्मार्क ने राजसभा को सूचना दी कि अभी १८६३ के लिये जो आय व्यय का व्यौरा पेश किया गया था, वह रोक लिया जायगा। पहले चलते हुए १८६२ वें साल का व्यौरा ही कुछ बदल कर सभा में पेश किया जायगा। साथही उसने यह भी कहा कि उस व्यौरे में जहां तक हो सकेगा सभा की इच्छा के अनुकूल परिवर्तन करदिया जायगा; थोड़े दिनों में नया व्यौरा पेश हुआ। सभा ने नियमानुसार उसे एक छोटी उपसभा में भेज दिया।

उपसभा में बिस्मार्क का सभा के साथ असली संग्राम शुरू हुआ। उस सभा में भी राजसभा के ही सभासद् रहते हैं। वे अपनी पुरानी नीति पर तुले हुए थे। बिस्मार्क के मन्त्री होने से वे और भी खिजे हुए थे। पेश किये गये व्यौरे का ख़ूब विरोध होने लगा। बिस्मार्क ने उनका उत्तर देने में कसर नहीं छोड़ी।

नये मुख्य मन्त्री के भाषण को सुनने के लिये सभा के मेम्बरों से स्थान भरा हुआ था। बिस्मार्क के भाषण को सुनकर वे निराश नहीं हुए। वह यद्यपि गूंज की दृष्टि से बड़ा वक्ता न था, तथापि उसके भाषण में उचित शब्द-रचना के साथ वाक्यों का तीखापन और विचारों की स्पष्टता ऐसे मिले हुए थे कि उनका प्रभाव बहुत होता था। राजसभाओं में बोलने का जो सच्चा ढंग है, उसमें बिस्मार्क गुरु था। उसकी आवाज़ अन्य बड़े २ वक्ताओं के समान ऊंची गहरी और लचकीली न थी, उस के हाथों का तथा शरीर का हिलना जुलना बर्क और केशवचन्द्र सेन के समान प्रभावोत्पादक न था, किन्तु इन सब न्यूनताओं को पूरा करने के लिये एक विशेषता थी, जो उसके भाषणों को प्रभावशाली बना देती थी। वह बड़ा दृढ़ पुरुष था, और उसके शब्द उसकी आन्तरिक दृढ़ता के चिन्ह होते थे। वह जानता था कि वह क्या कह रहा है। जो कुछ वह कहता था, उसमें स्पष्टता और दृढ़ता कूट कूट कर भरी होती थी। वह स्वभाव से ही लड़ाकू था इसलिये उसके भाषणों में भी लड़ाई का अंश बहुत पाया जाता था।

उपसभा के अधिवेशनों में उसे बहुत बार बोलना पड़ा। उसने राजा और मन्त्रियों का विरोध करने वाले सभासदों को समझाया, प्रशियन होने के नाम पर अपील की, विश्वास दिलाया कि 'हम भी देश के वैसे ही हितैषी हैं, जैसे तुम हो' और अन्त में उन्हें बतलाया कि 'किन्तु इस प्रकार का संगठन पर झगड़ा कोई अपमानजनक बात नहीं है, वह एक प्रकार की प्रतिष्ठा है। आखिर हम सब एक ही देश के पुत्र हैं।' सभा की समालोचना का निर्देश करते हुए उसने उन्हें बतलाया कि लोग जर्मनी के वासियों को बड़ा विनयी समझते हैं, किन्तु असल में इतने अभिमानी लोग कहीं भी नहीं हैं। जर्मनी में हरएक मनुष्य समालोचक है, हर एक अपने आप को बृहस्पति का अवतार समझता है। इस प्रकार बहुत कुछ समझाकर अन्त में बिस्मार्क ने सभा को सूचित किया कि स्वास्थ्यपूर्ण राजनीतिक जीवन की रक्षा के लिये और बड़े२ नीतिक प्रश्नों को हल करने के लिये कभी बहुत वक्तृतायें और बहुसम्मतियां पर्याप्त नहीं होतीं। १८४८ और १८४९ में यही बड़ी भारी भूल हुई। जातियों के तख्ते इन वस्तुओं से नहीं पलटे जा सकते, उसके लिये 'लहू और लोहे' की आवश्यकता है। संसार भरकी थोड़ी सी व्यापक सचा-

इयों में से एक यह भी सचाई है। जो लोग लहू और लोहे को भूत और प्रेत की तरह डर की वस्तु समझते हैं, वे इस वाक्य के गौरव को नहीं समझ सकते। देश या राष्ट्र के जो काम हज़ार व्याख्यानों से नहीं होसकते, वे एक तलवार की चोट से होजाते हैं। जो राजनीतिक प्रश्न सौ राजदूतों के इधर उधर आने से हल नहीं होते, वे एक गोली के चलने पर तय होजाते हैं।

'लहू और लोहे' की बड़ी महिमा है। बिस्मार्क का नाम ही 'Iron Duke' या लौहमय ड्यूक था। उसकी नीति 'लोहे और लहू' के नाम से प्रसिद्ध थी। वह सभाओं और सन्धिपत्रों को राजनीतिक उन्नति में बहुत थोड़ा कारण समझता था। यह कहने में कोई भी इतिहास का जानने वाला आगा पीछा नहीं कर-सकता कि बिस्मार्क की नीति ही सच्ची नीति थी। किसी देश का इतिहास देखिये, किसी जाति की उन्नति की कथा पढ़िये, आप को ज्ञात होगा कि उसमें व्याख्यानों और प्रस्तावों का उतना भी स्थान नहीं है, जितना एक नाटक में विदूषक का होता है। उन्नति के नाटकों में नेता सदा 'लहू और लोहे' का सर्दार ही रहता है। हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि व्यर्थ में लहू बहाने या लोगों का नाश करने से ही उन्नति हो सकती है, किन्तु इसमें भी किसी को सन्देह नहीं हो-सकता कि देश और राष्ट्र, उन्नति के लिये लहू का बलिदान चाहते हैं, बलि के विना उनकी तृप्ति नहीं होती।

बिस्मार्क के तेज़ भाषणों ने उपसभा को और भी जला दिया। उसका पेश किया हुआ आय व्यय का व्यौरा काट छांट कर सभा की सम्मति के अनुसार कर दिया गया और फिर वह राजसभा में पेश हुआ। वहां भी उसी बदली हुई दशा में स्वीकार करके ठाकुरों की सभा (House of Peers) में भेजा गया। इस सभा में देश के बड़े २ ज़मीन्दार, जिन्होंने अपनी पुरानी सेवाओं के कारण राजा से बहुत सम्मान पाया था, तथा बड़े २ ठाकुर मिलकर राजसभा के निश्चयों पर फ़िर विचार करते थे। यह इंग्लैण्ड के हाउस आव लार्ड्स के समान थी। इस में राजसभा का स्वीकार किया व्यौरा पेश हुआ और अस्वी-कृत हुआ। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि हर एक देश के बड़े २ धनी मानी पुरुष प्रजा के साथ रहने की अपेक्षा राजा के साथ रहने में ही अपनी

भलाई समझते हैं। राजा ही उनका आश्रय होता है, उसी की रक्षा में उनकी भी रक्षा रहती है। इस लिये ठाकुरों की सभा ने राजसभा के भेजे हुए व्यौरे को काट छांट कर वैसाही बना दिया, जैसा बिस्मार्क ने पेश किया था। यह शोधा हुआ व्यौरा राजसभा में भेजा गया। राजसभा ने इसपर यह प्रस्ताव पास किया कि ठाकुरों की सभा को व्यौरे में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। राजसभा इस प्रस्ताव को स्वीकार करके विसर्जित की गई।

ठाकुरों की सभा और राजसभा के परस्पर सम्बन्धों को समझने के लिये प्रशिया के राजसंगठन के विषय में दो चार शब्द अप्रासंगिक न होंगे। हर एक प्रस्ताव, जो पहले राजसभा में स्वीकृत होता था, ठाकुरों की सभा में भेजा जाता था। जब वह उस सभा में चला जाता था, और पेश हो कर स्वीकृत हो जाता था, तब राजा की सेवा में भेजा जाता था। राजा के स्वीकार कर लेने पर वह 'राजनियम' समझा जाता था। जो प्रस्ताव राजसभा में स्वीकृत हो जाय, किन्तु ठाकुरों की सभा में स्वीकृत न हो वह नियम नहीं बन सकता था। जो प्रस्ताव निचली दोनों सभाओं में भी स्वीकृत हो जाय, किन्तु राजा उसे स्वीकार न करे, वह भी राजनियम नहीं समझा जा सकता था—तीनों स्थानों पर स्वीकृति आवश्यक थी।

आय व्यय का व्यौरा बिस्मार्क ने राजसभा में पेश किया, वहां से परिवर्तित रूप में स्वीकार करके ठाकुरों की सभा में भेजा गया। उन्होंने राजसभा के भेजे हुए व्यौरे को स्वीकृत नहीं किया। इस हालत में वह प्रस्ताव ही रहा, नियम नहीं बना। जब नियम नहीं बना तो उस व्यौरे के अनुसार व्यय भी नहीं हो सकता था। १८६२ का साल चल रहा था, उसके व्यय का व्यौरा स्वीकृत नहीं हुआ तो राज्य का कार्य चले कैसे?

बिस्मार्क ने ठाकुरों की सभा द्वारा व्यौरे के अस्वीकृत होने पर यही युक्ति दी। उसने कहा कि जब चलते साल का व्यौरा स्वीकृत नहीं हुआ तो राज्य का काम बन्द नहीं हो सकता। सेना को, राज्याधिकारियों को और पुलिस को घर को रवाना नहीं कर सकते। जब राज्य चलाना है, और व्यौरा स्वीकृत नहीं हुआ, तो पिछले वर्ष के अनुसार ही राज्य चलाना होगा। पिछले साल सेना के

लिये जो व्यय निश्चित हो चुका था, वही इस साल भी रहेगा। बिस्मार्क की युक्ति नियमों के अनुसार सर्वथा ठीक थी, इसी के अनुकूल वह राज्य करने लगा।

राजसभा बेचारी दंग थी। वह करे तो क्या करे? नियमों के अनुसार बिस्मार्क की कार्यवाही ठीक थी। राजसभा ने राजा के पास मन्त्रियों को पदच्युत करने के लिये प्रार्थनापत्र भेजना चाहा, राजा ने लेने से इन्कार कर दिया, और एक सभा में यहां तक कहदिया कि 'सेनासुधार का प्रस्ताव मेरा प्रस्ताव है, मैं इस के लिये प्राणपण से यत्न करूंगा' सारे देश के लोकमत के विपरीत, राजा और उस के मन्त्री दो वर्षों तक राज्य चलाते रहे। व्यौरा निश्चित न हुआ, और बिस्मार्क का हाथ ऊपर रहा।

बिस्मार्क इस युद्ध में जिस खतरे के नीचे था, वह उसे अज्ञात नहीं था। जो तलवार उस के सिर पर लटक रही थी, वह उसे अविदित नहीं थी। सारे देश से लड़ना सहज नहीं है। सोलवां लूई फ्रांस में प्राण दे चुका था और पहला चार्लस इंग्लैण्ड के मन्त्री सहित यमलोक को सिधार चुका था। लोकमत का विरोध कई बलियां ले चुका था। बिस्मार्क को ये दृष्टान्त जब याद दिलाये जाते तो वह यही कहता कि इस प्रकार की मृत्यु कोई निरादरपूर्वक मृत्यु नहीं है। राजा और देश की सेवा में प्राण देना किसी बुरे काम में प्राण देना नहीं है।

इस संगठन के झगड़े ने ही देश में पर्याप्त गर्मी फैला रखी थी, इस पर एक और झगड़ा छिड़ा, जिसने इन सबको आंखों की ओझल कर दिया। उसका विस्तारपूर्वक वर्णन अगले परिच्छेदों में पढ़िये।



तीसरा परिच्छेद ।

पोलैण्ड के साथ अत्याचार ।

इतिहास को दार्शनिक दृष्टि से देखने वालों में से वे विचारक, जो इस संसार के काले भाग को देखते हैं, कहते हैं कि सारा जगत् एक दुःखमय नाटक है; दूसरी ओर इस संसार के उजले भाग पर दृष्टि रखने वाले विचारक हमें बतलाते हैं कि मनुष्यसमाज के समान सुखमय नाटक खेलने वाला नटसमाज, कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता । दोनों मत एक दूसरे के विरुद्ध हैं; किन्तु दोनों के अन्दर एक बहुत बड़ा सचाई का भाग विद्यमान है । दृष्टि को ज़रा हलका करके घुमांय तो ज्ञात होने लगता है कि ऊपर कहे हुए दोनों प्रकार के विचारकों की दृष्टियां संकुचित हैं, वे आधे को देख कर ही रह जाती हैं । एक उदासीन देखने वाले के लिये यह संसार न दुःखमय नाटक है, और न सुखमय नाटक । इन दोनों का मेल, किन्तु इन दोनों से भिन्न यह तो एक उपहासमय नाटक है । इसे यदि एक प्रहसन से उपमा दें, तो अनुचित न होगा । संसारनाटक जैसा जीवन्त और ज्वलन्त प्रहसन किसी नाटचशाला में नहीं खेला गया होगा । उदासीन देखने वाले के लिये इस में हंसी के सब सामान मौजूद रहते हैं ।

नाटक में हम क्या देख कर हंसते हैं ? एक विदूषक आता है । उस की वेषभूषा विचित्र है । वह अपने आप को वृहस्पति और वाचस्पति का पूर्णावतार समझ कर बात चीत प्रारम्भ करता है, किन्तु सामाजिक लोगों को उस में पथरीली मूर्खता के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता । यह परस्परविरोध ही हंसाने वाला होता है । एक अनूठे कपड़ों वाला व्यक्ति रंगभूमि पर आता है, आकर वह बड़े ज़ोरदार स्वर से धर्म की दुहाई देकर कहता है कि परमात्मा का उस पर बड़ा कोप है, वह शत्रुओं से घिर गया है, उस का क़िला मिट्टी में मिला दिया गया है, सेनाओं में खलबली मच गई है और अब वह केवल अपने बाहुबल पर भरोसा करके शत्रुओं का क्षय करने जा रहा है । ये सब बातें सुनने के अनन्तर जब श्रोताओं को पता लगता है कि उस महावीर का घर ही क़िला है, जिस में मूसों

ने बिलें बना बना कर दीवारें खोखला दी हैं, और घर का अनाज भी हज़्म कर लिया, और शूरवीर योद्धा उस ही को मारने जा रहे हैं, तब उन की हंसी नहीं रुकती। यहां भी विलक्षण विरोधाभास ही उपहास का हेतु होता है।

क्या कोई विचारशील मनुष्य इस से इन्कार कर सकता है कि मनुष्यसमाज का पुराना इतिहास और वर्तमान अवस्थिति विरोधाभासों की ही लड़ियों के समान है। कोशल के राजा बीरुधकान्त ने हज़ारों शाक्यों को बरबाद कर दिया, कई निर्दोष सन्तों का रुधिर बहाया, सैकड़ों विधवाओं के कलेजों में कष्ट का कील ठोक दिया, हज़ारों अनाथों के जीवन को ऊजड़ उद्यान की भांती कंटीला बना दिया। यह सब कुछ क्यों किया गया? पुराने बौद्ध ग्रन्थ बतलाते हैं कि यह सब अनर्थ धर्म के नाम पर किया गया। कहां धर्म और कहां अत्याचार---कहां यज्ञवेदी और कहां बलिदान--क्या यह बात मुंह में पानी डालने के बहाने जीभ खेंच लेने के समान नहीं है? क्या यह विरोधाभास का उग्रतर नमूना नहीं है? यदि है तो फिर इस संसार के प्रहसन होने में क्या सन्देह है? योरप में ईसाई ने ईसाई का गला काटा, पादरी ने पादरी की फांसी का आदेश किया, इस पातक का मूल क्या बतलाया गया? वही बेचारा अशरणशरण 'धर्म', जिस का असली उद्देश्य संसार को शान्तिधाम बनाना बताया जाता है। क्या यह विरोधदृश्य दुःख के आंसुओं से भीगी हुई हंसी उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त नहीं है।

जिस घटना का हम वर्णन करने लगे हैं, वह भी इसी घातक विरोध का दृष्टान्त है। इस पुस्तक में इतना स्थान नहीं है कि हम उस का पूरा २ वर्णन कर सकें। पोलेण्ड योरप में एक बड़ी पुरानी और वीर जाति का निवासस्थान देश है। उसके साथ योरप की जातियों ने जो व्यवहार किया है, उसे पढ़कर आज भी हृदय वालों के हृदय पसीज पसीज कर पानी हो जाते हैं। पोलैण्ड की राम कहानी योरप की मानी जातियों के चरित पर लहू के धब्बे के समान है। यहां पर इतना अवसर नहीं है कि हमारी लेखनी उस लहू के दाग़ को स्याही बरसा कर धो सके। वह पोलैण्ड, जिस की छत्रच्छाया के नीचे, जर्मनी के वर्तमान शासकों के पूर्व पुरुषाओं ने आराम पाया था, सदियों से जर्मन लोगों के तीर का निशान हो रहा है। नैपोलियन ने पोलैण्ड वालों को वीर और उत्साही

किन्तु अत्याचारों से पीड़ित देख कर स्वाधीनता की बहुत सी आशायें दिलाई। उसी आशा की वारुणी में मस्त होकर पोलैण्ड के सूरमों ने नैपोलियन के लिये अपने सिर कटवाये, और उस विजेता के विजयकेतु को एक नगर से दूसरे नगर तक पहुंचाया। नैपोलियन पोलैण्डवासियों को अन्त तक आशा देता, और अपने काम में लगाता रहा। बीस वर्ष के पीछे पोल लोगों को पता लगा कि नैपोलियन के स्वाधीनता देने के दिलासे थोथे दिलासे ही थे, जैसे अनात्मीय राजाओं के दिलासे प्रायः हुआ करते हैं। नैपोलियन ने पोलैण्ड को खूब अंगूठा दिखलाया।

वीना की राजसभा ने नैपोलियन के अस्त व्यस्त किये हुए योरप को समेटने का यत्न किया था, उस राजसभा नें यह घोषणा दी थी कि वह नैपोलियन द्वारा छीनी हुई योरप की स्वाधीनता को फिर से लायगी, और सब देशों के टूटे फूटे अंगों पर मरहम पट्टी करेगी। किन्तु जब संसार ने उस सभा के परिणाम देखे, तो पता लगा कि वह मरहम पट्टी, जिसकी आशायें दिलाई जा रही थीं, असल में ज़हर का लेप था, जिससे प्रजा को बेहोश करके योरप की बड़ी शक्तियां अपना प्रयोजन सिद्ध किया चाहती थीं। स्वाधीनता का ढिंढोरा पीटने वाली राजसभा ने, पोलैण्ड को तीन टुकड़ों में विभक्त कर दिया, मानों एक शरीर को तीन हिस्सों में काट दिया। रूस उसका एक हिस्सा हड़प कर गया, आस्ट्रिया ने दूसरे भाग पर झपटा मारा और जो कुछ शेष था उसे प्रशिया ने नोंच लिया। इस प्रकार नैपोलियन के विरुद्ध स्वाधीनता के ढोलचियों ने शिकार को नोंच घसोट कर योरप की स्वतन्त्रता का ठेका निबाहा। क्या यह मर्मान्त वेदनादायी प्रहसन नहीं है? क्या इस कहानी को सुनने वाले के चित्त से बीभत्सा से मिला हुआ हास नहीं निकलता?

वीना की राजसभा ने पोलैण्ड को बांट दिया किन्तु मुंह रखने के लिये यह नियम साथ कर दिया कि उस अभागे देश के निवासियों के अधिकारों की रक्षा की जायगी, और उन पर सभ्य जातियों की भांति शासन किया जायगा। किन्तु जो रूस अपने घर में भी गुप्तहत्या और कारागार को राजनियम और सभ्य शासन समझता था, वह पोलैण्ड के साथ क्या सुलूक

कर सकता था ? पोलैण्ड वालों की इच्छा पूरी न हुई और वे निराश होगये । उन्होंने समाचार-पत्रों तथा व्याख्यानों द्वारा अपने मानसिक भावों को प्रकाशित करना प्रारम्भ किया तो उनके हथकड़ियां डाली गईं। जिन्हें देशभक्त समझा गया, उन्हें या तो देशनिकाला दिया गया, और या जेलखाने में पिस्सुओं का शिकार बनाया गया । जितने अत्याचार एक विजित और अधीन जाति के साथ किये जा सकते हैं, किये गये। किन्तु पोल लोग भी मनुष्य हैं, वे अन्य अधीन देशों की न्याईं नपुंसक नहीं हैं । वे स्वाधीनता से प्यार करते हैं और अत्याचारों के कुए में से उसे निकालने के हेत अपनी आंतों को रस्सी बनाने के लिये तय्यार रहते हैं । १८६३ की २२ वीं जनवरी को पोलैण्ड की रूसी राजधानी **वारसा** में पोल लोगों ने क्रान्तिका झण्डा खड़ा किया । देशभर के देशभक्त, सेनापति मीरोस्लोस्की (Mieroslawski) के चारों ओर घिर कर स्वदेशसेवा के लिये तय्यार होने लगे ।

इस समाचार ने सारे योरप में खलबली मचादी । हर एक देश इस क्रान्ति के झण्डे को भिन्न भिन्न दृष्टि से देखने लगा । रूस ने इस क्रान्ति को भयानक राजद्रोह समझा और पोल लोगों के रुधिर के तालाब में क्रान्ति को डुबोदेने का संकल्प किया । इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया और फ्रांस ने पोलैण्डवालों के पक्ष में शब्द उठाकर रूस के गौरव को धक्का देने का अवसर समझा । रहा प्रशिया, उसके विषय में योरप की शक्तियां सन्दिग्ध थीं। बिस्मार्क नया प्रधान सचिव बना था, और उस हैसियत में देश की बाह्य नीति में फँसने का उसके लिये पहला ही अवसर था । पोलैंड का प्रश्न उसके लिये बड़ा टेढ़ा था । एक ओर रूस का ज़ार था, जो स्वार्थ की युक्ति दिखा कर प्रशिया को अपनी ओर खेंच रहा था । रूसी पोलैण्ड में विद्रोह होने का तात्पर्य यह होगा कि जर्मनी के पोलैण्ड में भी अशान्ति होगी । अकेले रूस को ही धक्का नहीं पहुंचेगा, प्रशिया का एक बड़ा भाग भी पोल लोगों के विक्रम का शिकार होगा । ऐसी २ धमकियां थीं, जो रूस ने प्रशिया के सामने धर दीं । बिस्मार्क के पहले इतिहास से हम जान चुके हैं कि वह विद्रोह तथा क्रान्ति का स्वभाव से शत्रु था । जो बर्लिन में क्रान्ति को न सह सकता था, वह विना किसी विशेष स्वार्थ के पोल लोगों के विद्रोह को कैसे पसन्द करता ?

दूसरी ओर फ्रांस, इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया का आग्रह था। ये तीनों शक्तियां मिलकर, ज़ार से पोल लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करने की और प्रशिया से साथ मिलने की अभ्यर्थना कर रही थीं। लगभग सारा प्रशिया, जिस में समाचार-पत्रों का सब से प्रधान स्थान था, पोलैण्ड के पक्ष में झुका हुआ था। प्रशिया में पोल लोगों के साथ सहानुभूति उमड़ रही थी। जिन पोलों ने योरप की अनेक जातियों को विजय के मार्ग पर चलाया था, इटली के क्रान्तियुद्ध में जो सेनापतियों का काम कर रहे थे, अन्य जातियों की स्वाधीनता के लिये जो 'परोपकारव्रत' का पालन करते हुए बलिदान हो रहे थे, उनके साथ सहानुभूति का भाव होना जर्मन जैसी विचारक जाति के लिये स्वाभाविक था। पोल लोग सहानुभूति के अधिकारी भी थे। रूस पोलैण्ड पर राज्य करने का अधिकारी नहीं था, किन्तु पोल लोग अपनी मातृभूमि के लिये लड़ने का प्रत्येक अधिकार रखते थे। हर एक जाति का अपनी अपनी मातृभूमि पर स्वाभाविक, और ईश्वरप्रदत्त अधिकार है। शस्त्रविजय ईश्वरीय अधिकार को धो नहीं सकता। सम्भव है कि कोई जाति निर्बलता और मूर्खता से अपने अधिकार की रक्षा करने के योग्य न रहे, उस समय पर कोई भी विजेता उस पर अधिकार करलेगा, किन्तु शक्ति और इच्छा होने पर उस जाति का अधिकार है कि वह युक्ति या शक्ति से अपने ईश्वरप्रदत्त अधिकार को प्राप्त करे। रूस पोलैण्ड का स्वामी था, इस में पोलैण्ड का दोष था, यह ठीक है; किन्तु अपने आप को योग्य अनुभव करते हुए स्वतन्त्रता के लिये चेष्टा करने में वह दोषी नहीं था। ऐसे अवसर पर फ्रांस, इंग्लैण्ड तथा आस्ट्रिया का पोल लोगों को साधुवाद देने के लिये तय्यार होना उचित ही था। साथ ही उन शक्तियों का, प्रशिया की स्वाधीनताप्रिय प्रजा से सहानुभूति की आशा रखना भी अनुचित नहीं था।

प्रशिया के पास पोलैण्ड का एक भाग था। उसके लिये अपनी लूट की रक्षा का प्रबन्ध करना नैसर्गिक था। यह भी स्वाभाविक था कि रूसी पोलैण्ड में विद्रोह से प्रशियन पोलैण्ड में भी विद्रोह होजाय। किन्तु क्या इस उठती हुई ज्वाला को रोकने का यह साधन ठीक न था कि उसके नीचे से उस अंगारे को ही उठा लिया जाता जो आग को भड़का रहा था? क्या उस समय रूस को पोलैण्ड के साथ न्याययुक्त वर्ताव करने और कुछ अधिक अधिकार देने के

लिये तंग नहीं किया जा सकता था ? क्या अशान्ति के कारण को निवृत्त कर देने से ही शान्ति नहीं हो सकती थी ? फ्रांस, इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया ऐसा ही किया चाहते थे। वे अपनी चाहना में सफल भी होजाते, यदि रूस एकाकी रहता और प्रशिया भी उन का साथ देता, किन्तु बिस्मार्क ने इन तीनों शक्तियों के दूतों को कोरा उत्तर देदिया और रूस को सहायता का दिलासा दे भेजा। केवल दिलासे पर ही बस नहीं हुई, यह भी निश्चय होगया कि रूस और प्रशिया की सेनायें दो ओर से पोलैण्ड में घुसें, और देशभक्तों की सेना को मार भगायं। इंग्लैण्ड और फ्रांस ने बहुत कुछ कहा सुना, प्रशिया को देर तक समझाया बुझाया, किंतु जर्मनी की स्वाधीनता को आस्ट्रिया और फ्रांस के पंजे से छुड़ाने की इच्छा रखने वाले बिस्मार्क ने पोलैण्ड की स्वाधीनता का सर्वनाश करने में कोई हानि नहीं समझी। दोनों देशों की सेनाओं ने पोलैण्ड में प्रवेश किया और थोड़े किन्तु बहादुर देशभक्तों को तितर बितर कर दिया। मातृ-भक्तों पर किसी प्रकार की दया नहीं दिखाई गई। लग भग दस हज़ार पोल तलवार और गोली की मार से धराशायी हुए। जातीयता के उठते हुए पौदे को रुधिर के बरसाती नाले ने जड़ से उखाड़ कर कीड़ों का खाजा बना दिया।

बिस्मार्क ने इस समय अपने धैर्य्य का एक अजब नमूना दिखलाया। घर के किनारे पर विद्रोह मचा हुआ है। योरप की तीन मुख्य शक्तियां धमकियां देरही हैं। सारा जर्मनी एक शब्द होकर पोल लोगों के साथ सहानुभूति प्रका-शित कर रहा है। प्रतिनिधिसभा में उस पर वाक्यवाणों की तिर्छी वर्षा हो रही है, और उसे परवा नहीं। उसने रूस का साथ देने का निश्चय किया था, उसे पूरा किया। क्या इसे खूनी दृढ़ निश्चय कहें तो अशुद्ध होगा ? इस वृत्तान्त को पढ़कर बिस्मार्क के साहस के लिये आदरसूचक वचन मन से निकलते हैं, किन्तु वे वचन उस कालिमा को नहीं धोसकते, जो इस अत्याचारी कार्य में रूस का साथ देने से उसके चरित पर लग गई है। जातियों की इच्छा के विरुद्ध एक अत्याचारी को सहायता देना, ताकि वह अपने अत्याचारपूर्ण मार्ग पर चलता रहे, एक राजनीतिज्ञ के लिये कलङ्क का वज्रलेप धब्बा है। इतिहास 'लहू और लोहे' के शासक के इस लोहाप्रयोग को कभी क्षमा नहीं करेगा। एक जीती हुई, कुचली हुई किन्तु उठने की और अधिकार पाने की इच्छा रखने वाली जाति

को सहायता देने की जगह कुचलने का यत्न करना एक ओर अमनुष्यता है, तो दूसरी ओर राजनीतिक पाप है। यह बिस्मार्क के ऐसे कार्यों का और ऐसी नीति का ही प्रभाव है कि आज भी पोलैण्ड में रूस और जर्मनी की ओर से वे घोर अत्याचार होते हैं, जिन्हें सुनकर रोमांच होआता है। समय के प्रभाव ने और नीतिओं के असर ने किसी दिन परोपकार के भाव रखने वाले जर्मन लोगों को भी आज दयाशून्य शासक बना दिया है।

पोलैण्ड के शाप ने बहुत से साम्राज्यों का ध्वंस किया है। नैपोलियन ने पोल लोगों को स्वतन्त्रता की आशा दिला कर उन्हें अपने लिये लड़ाया, किन्तु एक कृतघ्न की न्यांई निराश छोड़ दिया। नैपोलियन का पर्वतसमान साम्राज्य लड खड़ा कर गिर पड़ा। रूस ने पोलैण्ड को सब से अधिक सताया है, उस के बदले में एशिया में जो उस का पराजय हुआ है, वह किसी से छुपा हुआ नहीं है। इस समय जर्मनी की वारी है। पोलैंड पर उसके अत्याचार सब परिधियों को पार कर गये हैं। भविष्यत् में जर्मनसाम्राज्य के लिये क्या लिखा है, यह भगवान् के सिवा और किसी को ज्ञात नहीं।

हमने आदि में लिखा था कि यह संसार एक बीभत्स प्रहसन है। जर्मनी के अधिकारों की दुहाई देने वाले बिस्मार्क का इस बहाने पर रूस को सहा-यता देना कि प्रशिया का इसी में भला है, क्या एक बड़ा भारी प्रहसन नहीं है? क्या सारी शक्तिशालिनी जातियां ऐसे ही थोथे बहानों पर निर्बल जातियों की गर्दन में अंगूठा देती हुई बीभत्स प्रहसन का अभिनय नहीं किया करतीं ?





पांचवां भाग

उन्नति की ओर गति



पहला परिच्छेद ।

पहला हाथ ।

हमारे पाठकों ने 'राजनीति' का नाम वहुत वार सुना होगा। शुक्र और चाणक्य की नीतियों के नाम से आज भी हमारे साहित्यभण्डार में पुराने आर्यों के नीतिसम्बन्धी उद्गार प्रसिद्ध हैं। किन्तु भारतवासियों के लिये इस शब्द का सुनना ही सुनना लिखा है, समझना या कहना नहीं। उनको इसका अवसर ही नहीं है। इसी लिये नीति की चर्चाओं को समझना उनके लिये परदेसी भाव होगया है। तथापि हमारे प्राचीन नीति ग्रन्थों में जिस प्रकार की नीतियां कही थीं, पञ्चतन्त्र और मुद्राराक्षस आदि ग्रन्थों ने उन्हें वहुत कुछ प्रजाविदित कर दिया है, उनके विषय में थोड़ा वहुत ज्ञान लोगों को हो ही जाता है। ऐसे सज्जनों से, जिन्होंने इन ग्रन्थों का या पश्चिमके नीतिशास्त्र का गम्भीर अनुशीलन किया है, हम प्रार्थना करेंगे कि वे विस्मार्क के जीवन के इस भाग को खूब ध्यानपूर्वक पढ़ें। विस्मार्क का अगले तीस पैंतीस वर्षों का चरित राजनीति का सुदीर्घ पाठ है। वह स्वयं राजनीति की एक विस्तृत पुस्तक है।

इस समय तक विस्मार्क केवल नाटक का देखने वाला सामाजिक था। वर्लिन में, फ्रैंकफोर्ट में या पेरिस में रहता हुआ वह चलती हुई घटनाओं को केवल देख सकता था, उस पर तालियां पीट सकता था, साधुवाद कह सकता था, या नाक भौं सुकेड़ कर छिः छिः कह सकता था। इस से अधिक उस के अधिकार से वाहिर था। घटनाचक्र के नकेल डालना उस के वश में नहीं था। किन्तु अब अवस्था में परिवर्तन आगया। अब वह राज्यचक्र का स्वामी होगया। सेना और राज्यकोश उस के सामने खड़े हुए कह रहे थे, कि 'हे स्वामिन्! आज्ञा दीजिये, रंगभूमि में कौन सा नाटक दिखलावें।' सारा प्रशिया ही नहीं, प्रत्युत सारा जर्मनी और सारा योरप भी इस नये सेनापति के हथकण्डे देखने के लिये उत्सुक होरहा था। घर के झगड़े में वह किस प्रकार सारी सभा का सामना करता रहा, यह हम पहिले परिच्छेदों में बतला आये हैं।

बिस्मार्क की सम्मति थी प्रशिया का वही राजमन्त्री घर में विजयी हो सकता है, जो घर से बाहिर जीत पासके। बाहिर विजय का झंडा फहराये विना देश वालों की कठोर आलोचना रुक नहीं सकती। जबतक लोग सेना की कोई जीत न देख लें, तब तक सभा की आज्ञा के विना सेना के लिये व्यय करना वे कैसे सह सकते थे? घर में ज़बर्दस्ती तभी सही जा सकती है जब बाहिर से विजयदुन्दुभि का निनाद सुनाई दे रहा हो।

बिस्मार्क ऐसे किसी अवसर की प्रतीक्षा में ही था। जिस उद्देश्य को उसने सन्मुख रखा था, वह स्पष्ट था। उसका उद्देश्य सारे जर्मनी देश को एक प्रशिया की छत्रच्छाया के तले लाना था। इस विषय में जर्मनी के उदारदल की सम्मति के साथ उस की सम्मति मिलती थी। किन्तु इसके आगे मतभेद था। उदारदल के लोग समझते थे कि व्याख्यानों सभाओं और सन्धियों से जर्मनी की सब रियासतें एक हो सकती हैं। बिस्मार्क का इस प्रस्तावबाद में विश्वास नहीं था। वह 'लहू और लोहे' की नीति का मानने वाला था। उस की राय थी कि प्रशिया को बलवान् बनाना चाहिये, उस की सेनाओं को अजेय बना देना चाहिये। जब उसका लोहा योरप के आकाशमण्डल में चमकेगा, तभी जर्मनी की सारी रियासतें हाथ जोड़ कर उस के सामने खड़ी होजायंगी।

बिस्मार्क इसी उद्देश्य को सामने रखकर आगे बढ़नेके लिये तय्यार बैठा था। 'प्रशिया' 'प्रशिया' का राग था, जिसे वह दिन में गाता, और सपने में सुनता था। उस की तय्यारी व्यर्थ नहीं हुई। बहुत शीघ्र ही घटनाओं का चक्र पलटने लगा, और उस की पूरी शक्तियां काम में लगीं।

जो घटनाचक्र अब चलने लगा है, उसके समझने के लिये हमें कुछ वर्ष पीछे से चलना पड़ेगा। यदि हमारे पाठक जर्मनी का मानचित्र उठाकर देखेंगे तो उन्हें जर्मनी के उत्तर भाग में दो रियासतें दिखलाई देंगी, जो इस समय जर्मन साम्राज्य के अन्दर हैं। उन में से पहली का नाम हौलस्टाइन (Holstein) और दूसरी का नाम श्लैज़्विग (Schllswig) है। श्लैज़्विग के साथ ही लगता हुआ डेनमार्क का राज्य है। जिस समय का हम इतिहास लिख रहे हैं, उस से बहुत पहिले हौलस्टाइ जर्मन साम्राज्य का एक भाग था। पीछे से वह एक बड़े ज़मींदार (Duke)

के अधिकार में रहा। धीरे २ वहां का ज़मींदार ही डेनमार्क का भी राजा होने लगा। श्लैज़्विग की रियासत भी डेनमार्क के राजा के अधिकार में ही थी। इस प्रकार दोनों रियासतों का और डेनमार्क का राजा एक ही था। राजा तो एक था, परन्तु यह नियम साथ ही समझा जाता था कि वे दोनों रियासतें (१) कभी डेनमार्क में मिलाई न जायंगी (२) और प्रत्येक अवस्था में इन दोनों का शासन एक ही आदमी के हाथ में रहेगा। श्लैज़्विग यद्यपि जर्मनी का भाग नहीं था, तथापि हौलस्टाइन के सम्बन्ध से वह भी आधा जर्मन होगया था।

१८४८ में हौलस्टाइन में कुछ गड़बड़ हुई किन्तु वह दब गई। उसी समय एक और झगड़ा उठा। डेनमार्क के राजा सातवें फ्रेडरिक के कोई पुरुषसन्तान नहीं थी। दोनों रियासतों के नियम के अनुसार स्त्री उन का राज्य नहीं कर सकती थी। झगड़ा यह था कि सातवें फ्रेडरिक के पीछे कौन राज्य करे? विवाद इतना बढ़ा कि योरप की सारी शक्तियों को बीच में आना पड़ा। लन्दन में योरप के राजप्रतिनिधियों की एक सभा हुई जिसमें इस प्रश्न को तय किया गया। क्रिश्चियन आव ग्लक्सवर्ग को अगला राजा निश्चित किया गया। साथ ही यह भी शर्त की गई, कि पहले रिवाज के अनुसार दोनों रियासतों को इकट्ठा रखा जाय और दोनों को ही डेनमार्क से जुदा रखा जाय।

लन्दन की इस सभा के नियमानुसार दोनों रियासतें डेनमार्क के ही आधीन हुईं। किन्तु राजनीति में प्रतिज्ञा का उपयोग समय विताना ही समझा जाता है, और कुछ नहीं। डेनमार्क ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया। रियासतों पर और जो २ बलात्कार किये गये, उनकी सूचि वहुत बड़ी हैं, उन्हें जाने दीजिये। १८६३ में जो हुआ, उसी से असली झगड़ा फिर से भड़का, इस लिये वहां से प्रारम्भ करते हैं ३० मार्च को डेनमार्क के राजा की ओर से एक घोषणापत्र निकला, जिस द्वारा हौलस्टाइन को सारे डैनिश राज्य से जुदा किया गया, और थोड़े ही दिन पीछे डेनमार्क की राजसभा ने प्रस्ताव स्वीकृत किया, कि श्लैज़्विग को डेनमार्क में ही मिला लिया जाय। इस प्रकार दोनों ही शर्तों का उसने भंग किया। पहली शर्त दोनों रियासतों को साथ रखने की थी, उसे तोड़ा गया;

और दूसरी शर्त उन्हें डेनमार्क के साथ न मिलाने की थी, उस का भी उल्लंघन किया गया।

हौलस्टाइन जर्मनी का एक भाग था। इस बलात्कार के कार्य का निर्देश करते हुए वहां के निवासियों ने सारे जर्मनी से सहायता की प्रार्थना की। साथ ही उन की ओर से जर्मन डायट में भी सहायता के लिये याचना की गई। सारे जर्मनी में कोलाहल मच गया। क्या समाचार-पत्र, और क्या व्याख्यान-भवन सब के सब एकस्वर होकर डेनमार्क को दण्ड देने के लिये चिल्लाने लगे। जर्मन डायट ने बहुसम्मति से निश्चय किया कि हौलस्टाइन को एक दम जर्मन रियासतों की सम्मिलित सेनाओं से घेर लिया जाय, और उस के ऊपर अपना अधिकार जमा लिया जाय। साथ ही यह भी निश्चित हुआ कि पीछे से यह देखा जाय कि उस रियासत पर राज्य करने का अधिकारी कौन है? इस निश्चय के अनुसार सैक्सनी और हनोवर की सेनाओं ने हौलस्टाइन पर कब्ज़ा कर लिया। उनकी सेनाओं के साथ आस्ट्रिया और प्रशिया की भी सेनायें थीं। आस्ट्रिया और प्रशिया के कहने पर डायट ने यह भी स्वीकार किया था कि यदि डेनमार्क का राजा हौलस्टाइन पर अधिकार जमा लेने के पीछे भी अपनी करनी से बाज़ न आय, तो श्लैज़्विग को भी अपने अधीन कर लिया जाय। हौलस्टाइन पर अधिकार जमा कर जर्मन सेनाओं ने श्लैज़्विग पर भी आक्रमण की धमकी दी।

इधर ये कार्यवाहियां हो रही थीं, आइये हम देखें कि उधर बिस्मार्क क्या मंसूबे बांध रहा था?

बिस्मार्क प्रशिया का सच्चा पुत्र था, वह हर एक घटना को प्रशिया की दृष्टि से देखता था। यदि एक पत्ता भी हिलता था तो वह सोचता था कि इस की गति से प्रशिया को क्या लाभ पहुंच सकता है? इस झगड़े को भी वह प्रशिया के लिये उपयोगी बनाया चाहता था। जिस लन्दन की सभा का हम पहले वर्णन कर आये हैं, उस में प्रशिया भी शामिल था। प्रशिया ने भी उस सभा के निश्चयों पर अपनी मुहर लगाई थी। इस समय डेनमार्क ने उन निश्चयों का भंग किया। उन देशों का, जिन्होंने सभा में भाग लिया था, इस समय कर्तव्य था, कि वे डेनमार्क को सीधे रास्ते पर लाते। डेनमार्क उन निश्चयों

के विरुद्ध किया करे और योरप के सारे देश चुप बैठ रहें तो आगे से उन के निश्चयों की इतनी भी क़ीमत नहीं रह सकती, जितनी एक सूखे हुए पत्ते की होती है। इसलिये प्रशिया और आस्ट्रिया ने डेनमार्क की सरकार को सम्मिलित सूचना दी कि उसे सभाके निश्चयों के अनुसार ही कार्य करना चाहिये, उनसे विरुद्ध नहीं। सभा में मुख्य भाग इंग्लैंड का था, इसलिये उसने भी डेनमार्क को समझाने के लिये बहुत यत्न किया।

इसी बीच में डेनमार्क का राजा सातवां फ्रेडरिक परलोकगामी हुआ। लंदन की सभा के नियमानुसार क्रिश्चियन आव ग्लक्सबर्ग राजगद्दी पर बैठने के लिये आया। इधर वह राजच्छत्र की छाया में बैठने लगा, उधर दोनों रियासतों के स्वामित्व का एक और उम्मेदवार निकल आया। ड्यूक आव आगस्टन्बर्ग का एक पुराने जर्मन परिवार से उद्भव था। हौलस्टाइन और श्लैज्विग पर क्रिश्चियन आव ग्लक्सबर्ग की अपेक्षा औगस्टन्बर्ग का अधिक अधिकार था। उसने पहले राजा के मरते ही अपने अधिकारों की घोषणा दे दी। उसने कहा कि डेनमार्क का राजा अपने देश का राजा रहे, दोनों ज़मीन्दारियों का अधिकार मुझे मिलना चाहिये।

लंदन की सभा फ़ैसला कर चुकी थी कि डेनमार्क का और दोनों रियासतों का राजा एक हो और वह क्रिश्चियन आव ग्लकूसबर्ग हो। आगस्टन्बर्ग के अधिकार उस सभा के आगे लाये गये थे, उन पर विचार हुआ था परन्तु वे पर्याप्तरीति से प्रबल नहीं समझे गये थे। इस समय औगस्टन्बर्ग का अपने अधिकार की घोषणा देना उस सभा के निश्चयों से विरुद्ध था। औगस्टन्बर्ग का कथन यह था कि पहले तो लंदन की सभा में जो निश्चय हुआ, वह कोई ब्रह्मवाक्य नहीं था कि उसका विरोध न हो सके; दूसरे डेनमार्क ने जब सभा के निश्चयों की परवा नहीं की तब उस के निश्चय नहीं चल सकते। सारा जर्मनी, जो दोनों रियासतों को डेनमार्क के पंजे से निकालना चाहता था, आगस्टन्बर्ग के साथ था। जर्मनी के लग भग सब पत्रों और उदारदल के सब नेताओं ने एक शब्द हो कर आगस्टन्बर्ग के पक्ष में घोषणा दे दी।

बिस्मार्क इन विषयों में दूसरे ही ढंग पर सोचता था। वह विचारता था कि औगस्टन्बर्ग के राजा होने से प्रशिया को क्या लाभ होगा? सब बातों का

विवेचन करके उस की राय हुई थी कि प्रशिया को औगस्टन्बर्ग का साथ देने से कुछ नहीं मिलेगा। उसके इस विचारके और भी बहुत से कारण थे। उन में से (१) प्रथम यह था कि डेनमार्क का राज्य जर्मनी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखता, उससे प्रशिया को कोई डर नहीं है, किन्तु ऐन पड़ोस में एक नया राजा बन जाना प्रशिया के लिये सदा झगड़े का कारण होगा। (२) दूसरा कारण यह था सारा जर्मनी ओगस्टन्बर्ग के साथ था। उदारदल भी उस के साथ था। बिस्मार्क औगस्टन्बर्ग के राजा बनने में जर्मनी और उदार दल की जीत समझता था, जिस से उसे बड़ी भारी घृणा थी। (३) उसका यह भी विचार था कि डेनमार्क एक निर्बल राज्य है, ऐसा समय आ सकता है, कि प्रशिया इन दोनों रियासतों को उस से छीन ले। यदि एक जर्मन राजा उन पर राज्य करने लगा तो बीच में जर्मन डायट का झगड़ा आ पड़ेगा, और फिर इन रियासतों को प्रशिया के साथ मिलाना असम्भव हो जायगा। (४) इन तीनों कारणों से बढ़कर कारण यह था कि बिस्मार्क इसी समय दोनों रियासतों को अपने क़ाबू करना चाहता था, और उसका एक यही ढंग था कि औगस्टन्बर्ग को अलहदा रखा जाय और डेनमार्क से रियासतें छीन ली जांय। इन सब बातों पर विचार करके उसने निश्चय किया कि वह लन्दन की सभा के निश्चयों पर दृढ़ रहेगा। जर्मनी उस के विरुद्ध है तो परवा नहीं, प्रशिया का लोकमत और लोकमत को प्रकाशित करने वाली सभा उसके विरुद्ध है तो उनके साथ उसकी मैत्री ही कौनसी थी जो टूट जाती। इस लिये किसी की परवा न करके बिस्मार्क ने औगस्टन्बर्ग की उम्मेदवारी पर कान न दिया।

इस बात में आस्ट्रिया उसके साथ था। दोनों विरोधिनी शक्तियां उस लोकप्रिय घटना के कारण क्षण भर के लिये एक हो गईं। दोनों ने मिलकर डेनमार्क को अन्तिम सूचना दी कि यदि वह अगली जनवरी तक लंदन के निश्चय के विरुद्ध घोषणापत्रों को मंसूख न करदेगा, तो प्रशिया और आस्ट्रिया की सेनायें श्लैज्विग पर अपना अधिकार जमा लेंगी। इस अन्तिम सूचना के देने में भी बिस्मार्क ने एक चतुराई रखी थी। डेनमार्क के राजा को, प्रस्तावों को मंसूख करने के लिये जो अवधि दी गई थी, वह जान बूझ कर इतनी दी गई थी कि उसके अन्दर यदि वह चाहे तो भी कुछ न कर सके। लंदन की सभा

के निश्चय के विरुद्ध जो घोषणायें दी गई थीं, वे केवल राजा ने नहीं दी थीं, उन के उठाने वाली डेनमार्क की राजसभा थी । राजसभा ही उन्हें मंसूख़ भी कर सकती थी। कई कारणों से यह निश्चित था कि राजसभा का अधिवेशन जनवरी से पूर्व नहीं हो सकता, तब वे घोषणायें भी मंसूख़ नहीं हो सकतीं। यह सब सोच विचार कर ही बिस्मार्क ने अन्तिम अवधि जनवरी को रखा था। वह चाहता था कि डेनमार्क अपनी घोषणाओं को मंसूख़ न करे, और प्रशिया-आस्ट्रिया की सेनायें श्लैज्विग को घेर लें। ऐसा ही हुआ भी। नया साल प्रारम्भ होते न होते श्लैज्विग में दोनों सम्मिलित शक्तियों की सेनायें फैल गईं।

हम ऊपर कह आये हैं कि बिस्मार्क का इस नीतियुद्ध में एक यही उद्देश्य था कि किसी प्रकार दोनों रियासतों को प्रशिया के अधिकार में लाया जाय। उस में पहला पड़ाव तो पार हो गया। वे दोनों रियासतें डेनमार्क के हाथ से निकल कर प्रशिया और आस्ट्रिया की सेनाओं के हाथ में आ गईं। उन में से भी पिछले सालों के सुधार से यह स्पष्ट होगया था कि प्रशिया की सेनायें दूसरी सेनाओं की अपेक्षा अधिक प्रबल थीं। एक पड़ाव पार हो गया, अब दूसरा पड़ाव शुरू होता है।

दूसरा परिच्छेद।

प्रशिया का नीतिविजय।

बिस्मार्क को स्पष्ट दीख रहा था कि अब प्रशिया के हाथ में रियासतों का आना तभी हो सकता है, जब तीन विघ्नों को दूर किया जाय। उन में से पहला विघ्न (१) जर्मनी के देशों की अन्य सेनाओं का था, जो जर्मन डायट के निश्चयानुसार हौलस्टीन को घेरे पड़ी थीं। हम ऊपर बता आये हैं कि डायट के प्रस्ताव के पीछे सैक्सनी और हनोवर ने हौलस्टीन को व्याप्त कर लिया था। जब तक उन्हें हौलस्टीन से बाहर न किया जाय, तब तक बिस्मार्क का उद्देश्य सिद्ध होना असम्भव था। (२) दूसरा विघ्न ड्यूक आव आगस्टन्बर्ग का था। जब तक उस की उम्मेदवारी लोगों के सामने हो, बिस्मार्क का काम बनना असम्भव था। (३) अन्तिम किन्तु सब से जटिल प्रश्न आस्ट्रिया का था। आस्ट्रिया प्रशिया का साथ तो दे रहा था, किन्तु इस लिये नहीं कि वह रियासतें लेकर बिस्मार्क के हाथों में दे दे; किन्तु इस लिये कि स्वयं कुछ उपलब्धि करे। बिस्मार्क चाहता था कि शान्ति से यदि आस्ट्रिया प्रशिया को रियासतें देना मान ले तो वाह वाह, नहीं तो फिर 'लहू और लोहा' तो कहीं गये ही नहीं।

बिस्मार्क कमर कस कर इन तीनों विघ्नों को दूर करने के लिये तय्यार हुआ। उसकी नीति यह थी कि पहले दो विघ्नों को आस्ट्रिया की सहायता से दूर किया जाय, और फिर उससे निबट लिया जाय। जर्मन सेनाओं का जुदा करना कोई कठिन काम नहीं था। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया को ख़ूब पढ़ा गुढ़ा दिया और दोनों देशों की ओर से सैक्सनी और हनोवर को सूचना दी गई, कि जर्मन डायट का निश्चय तभी तक चल सकता था जब तक दोनों रियासतें डेनमार्क के हाथ में हों। अब क्योंकि रियासतों पर कब्ज़ा आस्ट्रिया और प्रशिया का है, इस लिये उनकी सेनाओं को घर का रास्ता लेना चाहिये। साथ ही बिस्मार्क ने यह भी धमकी दी कि यदि केवल पत्र से काम न चलेगा तो प्रशिया की सेना भी तय्यार है। बेचारे सैक्सनी और हनोवर क्या करते? दोनों मिली हुई शक्तियों

से लड़ाई करना उनके सत्त्व से बाहिर था। बेचारे होंठ चबा कर और हाथ मल कर रह गये। उनकी सेनायें, माथे पर त्योरियां चढ़ाये हुए, रियासतों से बाहिर होगईं।

अब औगस्टन्बर्ग की बारी आई। बिस्मार्क उस के अधिकारों को मानने के लिये तय्यार नहीं था। हां एक शर्त्त पर वह उस की सहायता कर देता। वह शर्त यह थी कि कील की बन्दरगाह, जो रियासतों में थी, प्रशिया को मिल जाती, और साथ ही औगस्टन्बर्ग सदा के लिये प्रशिया के राजा के नीचे रहना पसन्द करता। इसी विषय में बिस्मार्क और औगस्टन्बर्ग में पत्रव्यवहार हुआ, और वे दोनों आपस में मिले भी। औगस्टन्बर्ग स्वयं बर्लिन में आकर प्रशिया के मुख्य सचिव से मिला। बिस्मार्क ने अपने सारे प्रस्ताव उस के सामने रखे। औगस्टन्बर्ग उन प्रस्तावों को पूरी २ तरह से मानने को तय्यार न हुआ। जो शर्तें बिस्मार्क ने उस के सामने रक्खीं थीं, लगभग वही जब उस ने आस्ट्रिया के देखने के लिये भेजीं, तो आस्ट्रिया के एक राजसचिव ने कहा था कि:—

"मैं तो आलू खोदने का काम करना पसन्द करूं किंतु प्रशिया की इन शर्तों पर कभी राजा न बनूं"। बिस्मार्क ने बातचीत में राजपुत्र को अवसर दिया कि प्रशिया की इच्छाओंको पूरा करके रियासतों का राजा बन जाय किन्तु राजपुत्र ने उस अवसर को लेना उचित न समझा। अब बिस्मार्क के लिये अगला मार्ग साफ़ होगया। औगस्टन्बर्ग के अधिकारों का विरोध करना उस का उद्देश्य होगया। औगस्टन्बर्ग की उम्मेदवारी को हलका करने के लिये, रूस के ज़ार की सम्मति से उसने रियासतों के राज्य का एक और उम्मेदवार खड़ा कर दिया। साथ ही उस ने आस्ट्रिया से कहा कि हालस्टाइन और श्लैज्विग के अधिकारी का जब तक निर्णय न हो, तब तक औगस्टन्बर्ग को उन रियासतों से दूर रखा जाय। उधर फ्रांस के सम्राट् तीसरे नैपोलियन का यह प्रस्ताव भी प्रकाशित होगया कि दोनों रियासतों का असली अधिकारी प्रशिया है। नहीं कह सकते, इस प्रस्ताव में बिस्मार्क का कितना हाथ था।

यह सब कुछ देख कर शायद आस्ट्रिया के चित्त में खटका पैदा होगया। उस के दिल में बिस्मार्क का असली उद्देश्य कुछ २ झलकने लगा। उसे प्रतीत

होने लगा कि वह तो केवल प्रशिया की इच्छा पूरी करने का साधन बनाया जा रहा है। वह चौकन्ना होगया। सावधानता का पहला काम उसने यह किया कि औगस्टन्बर्ग के पक्ष का समर्थन प्रारम्भ कर दिया। कथनमात्र से सन्तुष्ट न होकर उसने सैक्सनी की सहायता से जर्मन डायट में यह प्रस्ताव पास करवा दिया कि अब उचित है कि आस्ट्रिया और प्रशिया की सेनायें दोनों रियासतों का अधिकार औगस्टन्बर्ग को सौंप कर जुदा हो जांय।

बिस्मार्क आस्ट्रिया के पक्षपरिवर्त्तन को देखकर पहले तो एकदम चौंक उठा। जिस आस्ट्रिया का सहारा लेकर अभी वह औगस्टन्बर्ग को दूर किया चाहता था, उसने पैंतरा ही बदल लिया। पहले तो बिस्मार्क इस से थोड़ा सा खिजा, किन्तु शीघ्र ही संभल गया। इसी दृष्टान्त को लेकर पीछे से वह कहा करता था कि राजनीति में मनुष्य का हिस्सा बहुत थोड़ा है, सब कुछ किसी दैवी शक्ति द्वारा ही नियमित किया जाता है। आस्ट्रिया के भरोसे पर जो भवन उसने खड़ा किया था, वह उसके पक्षपरिवर्त्तन से गिर गया। बिस्मार्क ने भी परम साहस के साथ दूसरा भवन खड़ा कर लिया।

डायट में इस प्रस्ताव के स्वीकृत होते ही प्रशिया का जहाज़ी बेड़ा कील नाम की बन्दरगाह पर जा खड़ा हुआ और वहां पर अपनी मोर्चाबन्दी शुरू कर दी। जब इस के विषय में पूछ ताछ की गई तो सेनाविभाग के मन्त्री रून ने कहा कि अब हमने इस बन्दरगाह को ले लिया है, और इसे अवश्य रखेंगे। उधर बिस्मार्क ने अपने इटली में रहने वाले राजप्रतिनिधि को लिखा कि वह वहां के राजमन्त्री से पूछे कि यदि आस्ट्रिया के साथ हम इस समय लड़ें तो क्या इटली की सेनायें हमारा साथ देंगी? चारों ओर प्रशिया और आस्ट्रिया में युद्ध की अफ़वाह उड़ने लगी। 'लहू और लोहे' की नीति का वीर अपने हर्बों को संभालने लगा।

ऐन समय पर आकर आस्ट्रिया का साहस छूट गया। शायद उसकी आर्थिक दशा बिगड़ी हुई थी। लड़ाई की बात छिड़ते ही उसका दिल टूट गया। युद्ध का भयानक पक्षी अपने डरावने पंखों की फटकार सुनाया ही चाहता था कि आस्ट्रिया का राजसचिव कौण्ट ब्लोमिगैस्टाइन के राजमहल में उपस्थित हुआ, जहां

प्रशिया का राजा विलियम अपने सर्वस्व बिस्मार्क के साथ स्वास्थ्य के सुधारने में लगा हुआ था। आस्ट्रिया ने आपस की समझौती का प्रस्ताव किया। राजा विलियम और बिस्मार्क भी ऐसी समझौती के लिये तय्यार थे, जिस में प्रशिया का हाथ ऊंचा रहे। गैस्टाइन की इस सन्धि द्वारा हालस्टाइन आस्ट्रिया के और श्लैज़्विग प्रशिया के अधिकार में दिया गया, और साथ ही लियौनूवर्ग की रियासत प्रशिया के राजा को देदी गई, जिसके बदले में आस्ट्रिया ने बीस लाख थेलर (जर्मनसिक्के) प्राप्त किये।

नीतियुद्ध का चक्र समाप्त हुआ। इस नीतियुद्ध में बिस्मार्क ने बहुत कुछ पा लिया। लंदन की सभा के निश्चयों का पक्ष करके उसने इंग्लैंड को प्रसन्न किया। रूस के ज़ार के खड़े किये हुए उम्मेदवार की थोड़ी बहुत पीठ ठोंक कर रूस की कृतज्ञता लूटी। औगस्टनूवर्ग को जुदा किया और श्लैज़्विग तथा लियौन्वर्ग प्रशिया के लिये प्राप्त करके अपने स्वामी विलियम के चरणों में भेंट किये। इन सब बातों से बढ़कर उसने आस्ट्रिया को राजनीति के क्षेत्र में ऐसा पछाड़ा कि सारे योरप के मुंह से वाह वाह के शब्द निकल पड़े। पहले उस से अपना काम सिद्ध कराया, समय पड़ते ही उसे युद्ध की धमकी दी, सारे देशों के देखते हुए आस्ट्रिया ने अपनी तलवार म्यान में डाल ली और समझौती के लिये निवेदन किया। प्रशिया ने औलमुज़ का देन, व्याज सहित आस्ट्रिया को लौटा दिया। इन सब नेताओं से प्रसन्न होकर राजा विलियम ने अपने भक्त और शक्त सेवक बिस्मार्क को कौण्ट की उपाधि से विभूषित किया।

तीसरा परिच्छेद

आस्ट्रिया से युद्ध

ज्वालामुखी में से जो ज्वाला उठा चाहती थी, उस पर ढकना दे दिया गया था, वह बुझी नहीं थी। प्रशिया और आस्ट्रिया के विरोध पर पर्दा गिराने का यत्न किया गया था, उसका नाश नहीं हुआ था। झगड़े के सारे कारण विद्यमान थे। बिस्मार्क के मन में आस्ट्रिया के प्रति अविश्वास कम नहीं हुआ था, प्रशिया की जयाभिलाषा तब तक दूर नहीं हो सकती थी, जब तक रून और बिस्मार्क राजसचिव हो, और जर्मनी की जनता अपनी पितृभूमि को एक बनाने की धुन में हो। उधर आस्ट्रिया की ऐंठ में भी न्यूनता नहीं आई थी, वह भी अपने आपको निचले दर्जे पर देखने से पहले बलपरीक्षा देने को तय्यार था।

प्रशिया और आस्ट्रिया में युद्ध आवश्यक सा हो गया था। बिस्मार्क प्रशिया की मुख्यता के नीचे सारे जर्मनी देश को एक बनाना चाहता था, आस्ट्रिया इसे सहन नहीं कर सकता था। प्रशिया, हालस्टाइन और श्लैज्विग को धन से, नीति से या बल से अपने अन्दर मिलाना चाहता था, आस्ट्रिया यह सहन नहीं कर सकता था। बिस्मार्क यह जानता था, आस्ट्रिया भी इस से बेखबर न था। गैस्टाइन की सन्धि तो नाटक का दृश्य बदलने के लिये केवल एक पर्दा था। अभी सन्धि हुए दिनही बीते होंगे, कि आपस में खैंचातानी शुरू होगई। झगड़े का प्रारम्भ रियासतों से ही हुआ। श्लैज्विग पर अधिकार जमाते ही प्रशिया ने तो इस प्रकार व्यवहार करना शुरू किया, मानो वह उसी की रियासत है, किन्तु आस्ट्रिया ने हालस्टाइन को अपनाया नहीं। उसने औगस्टन्बर्ग के अधिकारों को मान कर उसके नाम पर शासन प्रारम्भ किया। जहां देर से आस्ट्रिया लोकपक्ष का विरोधी और राजपक्ष का पक्षपाती चला आता था, वहां प्रशिया के साथ झगड़े में पड़ कर हालस्टाइन में उसने लोकपक्ष का ख़ूब उत्साहन शुरू कर दिया।

प्रशिया इस बात को ताड़ गया। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के राजप्रतिनिधि के पास इस व्यवहार की शिकायत की। आस्ट्रिया, जो लड़ाई पर उतारू हो चुका था,

चुप रहा । थोड़े दिनों के पीछे उत्तर दिया तो वह चुप से भी अधिक खिजाऊ था। उसने कहा कि अपने साम्राज्य में आस्ट्रिया स्वतन्त्र है, उस पर किसी और का शासन नहीं चल सकता । इस उत्तर को पाकर विस्मार्क समझ गया कि समय आगया है। वह देर से चाहता था कि आस्ट्रिया से प्रशिया की मुठभेड़ हो जाय। दोनों ओर के रणवीर योद्धा युद्धक्षेत्र में हाथ मिला कर निश्चय कर लें कि जर्मनी का भावी मुखिया कौन होगा ? विस्मार्क ने आस्ट्रिया के पत्र का उत्तर न दिया। स्वभावत: आस्ट्रिया के नीतिज्ञों ने इस का यह भाव समझा कि दोनों देशों की सन्धि टूटगई और युद्ध की भूमिका वंध गई।

अव युद्ध अवश्यम्भावी जँचने लगा । दोनों देशों की प्रजा और राजनीतिज्ञों की मण्डली में शीघ्र ही आने वाले युद्ध की चर्चा होने लगी । दोनों देशों के सेनाविभागों में भी तारें दौड़ने लगीं, और अपनी २ दशा की टटोल होने लगी । जव टटोल हुई तो दोनों देशों की सेनाओं में एक भेद दृष्टिगोचर हुआ । प्रशिया के सेनापति ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई तो अपनी सेनाको युद्ध के लिये सब प्रकार से तय्यार पाया । नये सुधारों के कारण आर प्रशियावासियों की अपनी दृढ़ता के कारण जहां सेना लड़ने को तय्यार वैठी थी, वहां उनकी स्थिति ऐसी थी, कि एक सप्ताह के अन्दर २ वह आस्ट्रिया के साथ भिड़ने के लिये सन्नद्ध हो सकती थी। किंतु जव आस्ट्रियन सेनापति ने अपने राज्य रक्षक सर्वस्व पर दृष्टि दौड़ाई, तो उसे थोड़ा सा निराश होना पड़ा । पहले तो सेना ही वहुत उत्तम अवस्था में नहीं थी, और फिर जैसी थी वह भी विखरी हुई थी। तीन चार सप्ताहों से पूर्व उसके लिये समरभूमि में उतरना सम्भव नहीं था। इटली में क्रांति होजाने के कारण वहुत सी सेना उसके इर्द गिर्द पड़ी थी, उसे वहां से उखाड़ कर जर्मनी की सीमाओं पर लाना समय और धन की अपेक्षा करता था । आस्ट्रियन साम्राज्य के धन की अवस्था इस समय अच्छी नहीं थी। देर तक सेनाओं को युद्ध के लिये तय्यार रखना कठिन क्या असम्भव था।

युद्ध के लिये आस्ट्रिया को प्रशिया की अपेक्षा तिगुनी चौगुनी तय्यारी करनी थी। प्रशिया को यह वड़ा लाभ था । विस्मार्क और सेनासचिव रून इस वात को ख़ूव जानते थे । यदि युद्ध होने का निश्चय होजाय, तो

आस्ट्रिया को पहिले तय्यारी शुरू करनी पड़ेगी। प्रशिया एक सप्ताह प्रतीक्षा कर सकता था। उस समय युद्ध की पूर्ण इच्छा रहते हुए भी बिस्मार्क शोर मचा सकता था कि 'वह देखो, आस्ट्रिया लड़ाई की तय्यारियां कर रहा है। हम ने तो अभी अपना एक भी मनुष्य नहीं हिलाया'। तब युद्ध करने का सारा सारा भार आस्ट्रिया के सिर पर पड़ेगा।

हुआ भी ऐसा ही। बिस्मार्क युद्ध चाहता था, किंतु वह जानता था कि एकाकी आस्ट्रिया के साथ युद्ध करना रत्नों की खोजके लिए ज्वालामुखी में कूद पड़ने के समान है। विना किसी दृढ मित्र की सहायता के युद्ध छेड़ना प्रशिया के भविष्यत् को सन्दिग्ध दशा में डालना था। उसने दृष्टि दौड़ाई, तो स्वाधीनता के लिये आस्ट्रिया से प्राणान्त युद्ध करता हुआ इटलीदेश उस के सामने आया। इटली पर आस्ट्रियन साम्राज्य की सत्ता थी। नीतिमुनि मेज़िनी द्वारा प्रेरित होकर, इटलीवासियों ने स्वाधीनता का झण्डा खड़ा किया था। पीडमाण्ट देश के राजा और मन्त्री ने उस झण्डे को अपने कन्धों पर रखा और पग २ पर आस्ट्रिया से भिड़ना शुरू किया। समान शत्रु रखने वाले दो देश परस्पर मित्र बन सकते हैं. प्रशिया और इटली की मैत्री भी स्वाभाविक थी। बिस्मार्क ने इटली के नीतिज्ञों से सन्धि का द्वार खोल दिया। पहिले व्यापार की सन्धि हुई, और पीछे नैतिक सन्धि होगई। पीडमाण्ट के सचिव से जब सन्धि के लिये कहा गया तो पहिले तो वह कुछ घबराया, उसने समझा कि शायद बिस्मार्क हमारी नौका को मंझधार में लेजाकर छोड़ देगा किन्तु उन्हें ज्ञात नहीं था, कि वह बिस्मार्क जो शत्रु के साथ की हुई सन्धि का मूल्य उस काग़ज़ के बराबर भी नहीं समझता था, जिस पर वह लिखी गई हो, वहां वह मित्र के साथ की हुई सन्धि के लिए मरने को भी तय्यार हो जाता था।

इटली और जर्मनी में कुछ विचार के पश्चात् दृढसन्धि होगई। सन्धि की मुख्य शर्त यह थी कि यदि आगामी तीन महीनों के अन्दर २ प्रशिया और आस्ट्रिया का युद्ध हो तो इटली प्रशिया के पक्ष से युद्ध करेगा। दूसरी शर्त यह थी कि युद्ध के पीछे प्रशिया, आस्ट्रिया के साथ मेल जोल न करेगा, जबतक वनीशिया प्रान्त इटली को न मिल जाय।

इटली के साथ सन्धि कर के उसे फ्रांस और रूस की चिन्ता हुई। सम्राट् तीसरे नैपोलियन से वह स्वयं मिला और उस से इस युद्ध में किसी का पक्ष न लेने की प्रतिज्ञा करवाली। उधर रूस के ज़ार को भी किसी ढंग से प्रसन्न कर ही लिया। दोनों ओर से निश्चिन्त होकर उसने आस्ट्रिया की चेष्टाओं पर ध्यान देना आरम्भ किया। प्रशिया और इटली की परस्पर सन्धिसे घबराकर आस्ट्रिया ने पहला वार करने का विचार किया। वार करने से भी अधिक विचार उसे अपनी रक्षा का था। बिखरी हुई सेनाओं को समेटना और प्रशिया की सीमाओं को शीघ्रही घेरना बहुत आवश्यक था। उस ने सेनायें हिलायीं, और बिस्मार्क ने सब जर्मन रियासतों के पास आस्ट्रिया की शिकायत भेजदी कि वह व्यर्थ में सेनाओं को इकट्ठा कर के हमें लड़ाई की धमकी देना चाहता है। आस्ट्रिया ने जो सोचा था वही हुआ। उस के माथे दोष मढ़ कर प्रशिया ने भी सेनासन्नाह का बिगुल बजा दिया।

अब आस्ट्रिया की बारी थी। प्रशिया के सेनासन्नाह को देख कर उसने प्रस्ताव कर दिया कि 'अच्छा, दोनों देश एक दम अपनी २ सेनाओं की तय्यारी करना छोड़ दें' बिस्मार्क ने उत्तर दिया ' एवमस्तु ' दोनों देश सेनासन्नाह को रोकने लगे किंतु जिस पर दैव कुपित होजाय उसके लिये वायु का मधुर झोंका भी वज्रप्रहार का काम देता है। एकदम समाचार फैलगया कि इटली की सेनाओं ने आस्ट्रिया पर धावा किया है। न जाने यह असत्य समाचार कैसे फैला। इस समाचार को सुनते ही सेना सचिव रून कूद पड़ा और उस ने कहा कि ' जब इटली तय्यार है, तब आस्ट्रिया शस्त्र नहीं रख सकता ' दूसरे रोज़ आस्ट्रिया के राजमन्त्री की चिट्ठी आगई कि इटली के डरसे हम सारी सेनाओं को शिथिल नहीं कर सकते, आस्ट्रिया का प्रस्ताव था कि दोनों देश शस्त्र रख दें, प्रशिया ने उसे स्वीकार कर लिया। अब आस्ट्रिया ही उससे विचल गया। प्रशिया का कोई दोष न हीं रहा।

इसी समय अपने पराजय को या लज्जा को धोने के लिये, आस्ट्रिया ने जर्मनडायट में रियासतों का प्रश्न छेड़ दिया, और जर्मनी के सब देशों से साथ देने के लिये प्रार्थना की। डायट में रियासतों का प्रश्न छेड़ना गैस्टाइन की

सन्धि के विरुद्ध था, इस लिये आस्ट्रिया और डायट की नियमविरुद्ध कार्यवाही की दुहाई देकर, बिस्मार्क ने अपने प्रतिनिधि को डायट से बुला लिया और युद्ध की घोषणा देदी। जर्मनी की दो एक छोटी २ रियासतों को छोड़ कर और सब ने आस्ट्रिया का साथ दिया। वीरसेना और दैवीशक्ति का भरोसा करके, प्रशिया ने, जीवन या मृत्यु के लिये, रणभूमि पर अपनी सारी शक्ति को उतार दिया।

चौथा परिच्छेद।

उत्तर-जर्मनी का विजय।

युद्ध छिड़ गया। युद्ध क्या था, प्रशियन सेनाओं की विजययात्रा थी। सप्ताह भर में उत्तरीय जर्मनी का बहुत सा भाग जीत लिया गया। आस्ट्रिया की सेनाओं के रणक्षेत्र में आने से पूर्व ही बहुत सा कार्य समाप्त होगया। हनोवर आदि के जीतने में कुछ भी देर न लगी। राजा विलियम अपने प्रधान सचिव बिस्मार्क के साथ ३० जून को युद्ध का निरीक्षण करने के लिये बर्लिन से चला। राजा विलियम जन्म से योद्धा था। चौथे फ्रेडरिक का छोटा भाई होने से यह किसी को आशा नहीं थी कि यही भावी छत्रपति होगा। इस लिये उस की शिक्षा सेनापति पद के योग्य हुई थी। राजा बनते ही विलियम का पहला काम सेना का सुधार करना था। अब भी सेनाओं पर उसका पुत्रवत् वात्सल्य था। प्रशियन सेना को वह अपनी रचना समझता था। प्रशियन राज्य संगठन के अनुसार वही देश का मुख्य सेनापति था।

बिस्मार्क प्रशिया का प्रधान मन्त्री होने से राज्य के सब कार्यों में मुख्य कार्यकर्ता समझा जाता था किन्तु सेना और युद्ध के मामले में उस के लिये प्रतिरोधक रेखा खिंची हुई थी। व्यय के लिये धन दे देने तक ही सेना के साथ उसका सम्बन्ध समाप्त होजाता था। सेना का प्रधान सेनापति स्वयं राजा विलियम था और उस के नीचे दो और जर्मनी के सुपूत थे जिन के नाम न केवल जर्मनी के, अपितु सारे योरप के इतिहास में स्थूलाक्षरों से लिखे जा चुके हैं। रून का वर्णन पहले आ चुका है, वह सेनाविभाग का सचिव था। मौल्क सेना का अध्यक्ष था। सेना के विषय में राजा की सलाह के अनुसार यही कर्ता धर्ता था। बिस्मार्क भी जन्म से योद्धा था, इसलिये और देशों के प्रधान मन्त्रियों की भांति आरामकुर्सी पर लेटे रहना, और केवल युद्ध विभाग द्वारा भेजे हुए तार समाचारों से देश के शरीररक्षकों की जीत हार के मन्त्र पढ़कर मुसकराना उस के लिये सह्य न था। कभी २ तो स्वयं सेना का मुखिया न होने पर

वह अधीर हो उठता था। यद्यपि वह सेनासचिव न था और न ही सेनापति था, तो भी सिपाहियाना वेष पहन कर-रणभूमि में घूमना, स्वयं लड़ाइयों को देखना, और घायल सिपाहियों को ढारस देना उसने अपना कर्तव्य समझ छोड़ा था।

राजा विलियम जब अगले दिन सेना के पास पहुंचा, तब एक बड़े भारी युद्ध की तय्यारियां हो रही थीं। आस्ट्रियन सेना कई छोटी २ रगड़ों में पछाड़ खाकर एक घोर युद्ध के लिये तय्यारी कर रही थी। कूनिङ्ग्राज़ का युद्ध प्रसिद्ध है। दोनों ओर की सेनायें पूरे ज़ोर में थीं। राजा विलियम अपने प्रधानसचिव तथा सेनासचिव आदि के साथ एक ऊंचे स्थान पर से युद्ध की चालों को देख रहा था। युद्ध बहुत देर तक अनिश्चित रीति से चला। युद्ध करनेवाली प्रशियन सेना का सेनापति छोटा राजपुत्र था। वह बड़ी वीरता से युद्ध कर रहा था। उसी समय युवराज के भी सेनासहित आकर मिल जाने की आशा थी। विजयश्री युवराज के आने पर ही तुली हुई थी। किसी कारण से युवराज की सेना को पहुंचने में देर लग गई। घण्टों पर घंटे बीतने लगे किन्तु युवराज की सेना न आई। राजा की मण्डली के मुंह पर चिन्ता के चिन्ह दिखलाई देने लगे। हर एक जानता था कि यदि और दो घण्टे युवराज न पहुंचा, तो हार प्रशिया की रहेगी। उस समय बिस्मार्क की क्या दशा होगी, इसे हमारे पाठक विचार सकते हैं। उस मनुष्य के लिये, जिसने सेना को सबल बनाने के लिये सारे देश से लड़ाई की और फिर आस्ट्रिया से युद्ध छेड़ कर सारे देश को खिजाया रणभूमि से हटना फांसी पर चढ़ने के समान था। वह जानता था कि यदि प्रशिया की सेना जीती, तो हर एक प्रशियन के हाथ में उसके गले में पहराने के लिये फूलों की माला होगी, और यदि दैव से आस्ट्रिया का पक्ष विजयी रहा तो क्रोध में भरी हुई जर्मनप्रजा बिस्मार्क की समाप्ति करने के लिये राजनियम की प्रतीक्षा न करेगी। असम्भव नहीं कि सड़क के किनारे गाड़ा हुआ कोई लालटैन का खम्बा ही उसके लिये फांसी बन जाय। न केवल प्रशिया का बल्कि सारे जर्मनी का भाग्य सन्देहदोला में लटक रहा था।

बिस्मार्क स्वयं सेना की असली हालत पर विचार नहीं कर सकता था। सेना सचिव रून से पूछना आवश्यक था। किन्तु ऐसी शोचनीय दशा में सीधा



GENERAL VON MOLTKE.

मौल्कै

पूछना और भी बुरा होता है। तब उसने एक चतुरता की। घोड़ा बढ़ा कर वह सेना सचिव के पास पहुंचा और अपनी चुरुटों की डिबिया उसके सामने रख दी। रून ने सब में से चुन कर अच्छा सिगार ले लिया। बिस्मार्क समझ गया कि जब सेनासचिव की बुद्धि इतनी ठिकाने है कि वह सिगारों में से उत्तम को पहिचानने के लिये समय दे सकता है, तो दशा आशातोड़नेवाली नहीं है। हुआ भी यही। थोड़ी देर में युवराज की सेनायें आ पहुंचीं, और दो ओर से घिरी हुई आस्ट्रियन सेना के पैर उखड़ गये।

प्रशिया की जीत हुई। साथ ही शताब्दियों से जर्मनी के गले में लटका हुआ पराधीनता का पट्टा उतर गया। जर्मनी के हर एक काममें टांग अड़ाने वाला आस्ट्रिया मुँह की खाकर घर की ओर लौटने लगा। राजा विलियम ने, कूनि-ङ्ग्राज़ की भूमि पर, प्रशियन ध्वजा के विजय के साथ, जयकारे की ध्वनि में गूंजता हुआ अव्यक्त सम्राट् शब्द भी सुन लिया।

इतिहास लेखक प्रायः इस बात के लिये थोड़ा सा स्थान अर्पण किया करते हैं कि इस युद्ध में प्रशिया के विजय का कारण क्या था? एक विशेष प्रकार की मशीनगन निकली थी, जो केवल प्रशिया के ही पास थी; नये सुधारों के कारण प्रशियन सेना अधिक अच्छी प्रकार से लड़ सकती थी; ऐसे २ कई कारण हैं जो इतिहासज्ञ लोग हमें बताते हैं। बिस्मार्क ने अपनी अर्धाङ्गिनी को रणभूमि से जो पत्र लिखा था, वह विजय के सब से बड़े कारण पर प्रकाश डालता है। उसने लिखा था 'हमारे सिपाही चूमे जाने के योग्य हैं। हर एक सिपाही मरने को खिलवाड़ समझता है, सुशील है, और आज्ञाकारी है। उनके पेट ख़ाली हैं, कपड़े गीले हैं, दिनों का उनींदा है, जूतों के तलवे उड़ रहे हैं, तो भी वे हर एक के साथ मिताई का व्यवहार करते हैं। लूट मार या शत्रु के गांव जलाना कहीं नहीं सुना गया। रद्दी से रद्दी रोटी का टुकड़ा भी यदि वे किसी से लें, तो यथासम्भव उसकी कीमत देते हैं। हमारे साधारण सिपाहियों के अन्दर गहरा धर्मभाव है, नहीं तो ऐसा सौजन्य नहीं हो सकता था" ऐसे ही शान्त, धार्मिक और वीर पुरुष होते हैं जो जातियों को गढ़े में से निकाल कर विजयाद्रि की चोटी पर बिठाया करते हैं। जिन जातियों के

अन्दर कर्तव्य और धर्म के लिये इस प्रकार का प्रेम नहीं रहता, वे शताब्दियों तक जीतने के सपने लिया करती हैं, फिर भी जब आंख खुलती है तो वही घना अंधेरा दिखलाई देता है।

रणभूमि पर मुख्य विजय होगया। पीछे कई दिनों तक थोड़ी २ रगड़ें होती रहीं, उन से हमें प्रयोजन नहीं। प्रशिया की सेनायें बराबर बढ़ती गईं, और उन्होंने मेन नदी के उत्तर का सारा भाग अपने काबू कर लिया। कूनिङ्ग्राज़ के युद्ध के अगले ही दिन बिस्मार्क के पास फ्रांस का तार आया कि आस्ट्रिया सन्धि करने के लिये तय्यार है। प्रशिया भी सन्धि के लिये अनुद्यत न था, वह विजयी था, इसलिये उसकी इच्छा यह अवश्य थी कि सन्धि द्वारा जर्मनी का स्वामित्व उसे मिल जाय। फ्रांस के सम्राट् तीसरे नैपोलियन का तार पाकर पहले तो बिस्मार्क बहुत झुँझलाया, क्योंकि युद्ध प्रारम्भ होने से पहले नैपोलियन बिस्मार्क से यह प्रतिज्ञा कर चुका था, कि युद्ध की समाप्ति तक वह बीचमें दख़ल न देगा किन्तु नैपोलियन वंशके तो रुधिर में ही दूसरे के खेतमें हल चलाने का लेख लिखा था, वह कैसे चुप रहता? बिस्मार्क ने नैपोलियन के इस विश्वासघात को अन्त तक नहीं भुलाया। विजय के समय में, जब कि दो एक और लड़ाइयां मार कर प्रशिया अपनी इच्छा के अनुकूल शर्तें लिखा सकता था, 'दाल भात में मूसलचन्द' बन बैठना और सरपञ्ची छांटने लगना, और वह भी पहले उदासीन रहने का वचन देकर, बिस्मार्क की दृष्टि में विश्वासघात से कम नहीं था पीछे से कुछ सोच विचार कर बिस्मार्क ने फ्रांस की सरपंची स्वीकार करली और सन्धिकी शर्तें पूछीं।

किस प्रकार से नैपोलियन मिनट २ में पैंतरे बदलता रहा, किस प्रकार आस्ट्रिया ने वनीशिया देकर इटली को जर्मनी से फाड़ने का यत्न किया, किस प्रकार इटली की वफ़ादारी ने उसकी इच्छा पूरी न होने दी, और किस प्रकार निर्भीक बिस्मार्क की दृढ़ नीति ने सब विघ्नों को काफ़ूर किया, यह कहानी लम्बी है और हमारे काम की नहीं। हमारे लिये इतना जान लेना पर्याप्त है कि २३ जुलाई को, दोनों ओर के सेनापतियों के विचार से, युद्ध रुक गया, और निकल्सबर्ग में सन्धि की शर्तों पर विचार होना शुरू हुआ

बहुत से झगड़ों के पश्चात् मुख्य तीन ठहराव ठहराये गये (१) मेन् नदी तक का जर्मनी देश का भाग प्रशिया के अधीन समझा जाय, उसके साथ वह चाहे जैसा व्यवहार करे। (२) वनीशिया इटली को दिया जाय (३) और जर्मनी की दक्षिणीय रयासतों को, जो प्रशिया के प्रभाव में नहीं है, खुला छोड़ दिया जाय। वे चाहे किसी से सन्धि करें। इस सन्धि से उत्तरीय जर्मनी पर प्रशिया के राजा का खण्ड राज्य स्थापित हो गया।

जो कार्य वैसे पहाड़ प्रतीत होते हैं, नीत और रीत से किये जाने पर वे पद्म के पत्तेकी भांति हलके हो जाते हैं। जहां सीधी मारी हुई तलवार भी निकम्मी हो जाती है, वहां ढंग से चलाया हुआ चाकू भी काम कर जाता है। इस समय सारा जर्मनी प्रशिया के चरणों में था। युद्ध छिड़ने से पूर्व बिस्मार्क ने जर्मनी की सब रियासतों को मेल के लिये निमन्त्रण दिया था। उन्होंने उस के निमन्त्रण का अनादर किया, और आस्ट्रिया से जा मिले। युद्ध हुआ, लोहे से लोहा लड़ा, और गोली ने गोली का जवाब दिया। प्रशिया की जीत हुई और जर्मनी के शेष सब देश, जो आस्ट्रिया रूपी वृक्षपर घोंसलों की भांति लटके हुए थे, पृथ्वीतल पर गिर पड़े। अब ऊंच नीच करना विजेता के हाथ में था। यह सम्भव था कि बिस्मार्क जर्मनी की सब छोटी छोटी रयासतों के राजसिंहासनों पर से छत्रपतियों को उतारकर उन सबको प्रशिया के राज्य में मिला लेता। यह ढंग शायद कठिन होता, किन्तु बेड़े को किनारे लगा देता। जिन राजाओं ने कठिनता के समय सदा प्रशिया को अंगूठा दिखलाया था, उन्हें पदच्युत करना न्याय विरुद्ध भी नहीं था। बिस्मार्क के स्वभाव को जो लोग पहचानते थे, वे उससे ऐसे ही किसी कठोर निश्चय की आशा रखते थे। किन्तु रीत और नीत के जानने वाले बिस्मार्क ने सबको आश्चर्यित कर दिया। उसने जो निश्चय किया वह उसकी नीतिमत्ता कोमलता और धीरता को सूचित करने वाला था। 'अभ्युदय में क्षमा' भूषण है, बिस्मार्क ने उसी का प्रयोग किया। उसने हनोवर के और दो एक और रियासतों के राजाओं को पदच्युत कर दिया, इस में सन्देह नहीं, किन्तु यह आवश्यक था। बहुत विरोध रखने वाली रियासतों को जीवित रखना सदा के लिये सिरदर्द ख़रीदना था। अन्य रियासतों के साथ उसने बड़ी नर्मी से वर्ताव किया। सैकूसनी के राजा को पदच्युत नहीं किया गया।

उसे केवल साथ ले लिया गया। इसी प्रकार और कई रियासतों के राजाओं को भी मिला लिया गया।

बिस्मार्क ने राजाओं को जीत लिया था, वह उन्हें आसनों से उतार सकता था, किन्तु वह जानता था कि आसन से उतरे हुए राजा जर्मनी के मेल के आमरण शत्रु होंगे। वह जानता था कि जर्मनी से निकाले जाकर वे कहीं इधर उधर पास ही घूमते रहेंगे और जर्मनी के शत्रुओं के लिये सदा हथियार का काम देंगे दूसरा एक और विचार भी उसके चित्त में था। जर्मनी का वह इस समय स्वामी था। उसे वह इस समय ऐसे बंधनों में बांध सकता था, कि फिर छुटकारा न हो सके। किन्तु अभी दक्षिणीय जर्मनी के देश स्वाधीन थे। वे प्रशिया के राजदण्ड को न मानते थे। बिस्मार्क का यह उद्देश्य था कि वह उन्हें भी जर्मनी के कुटुम्ब में मिला ले। किन्तु वह अब जर्मनी में जर्मनी के पुत्रों का लहू नहीं बहाना चाहता था। अब वह यह न चाहता था कि बर्लिन का निवासी बेरिया के रहनेवाले की छाती में कटार चलाये। वह स्वेच्छा से मेल का पक्षपाती था। उसका यही साधन था कि वह उत्तर जर्मनी के राजाओं के साथ कोमलतायुक्त व्यवहार करे, ताकि दक्षिणीय रियासतों के राजा पहले ही डर न जांय।

इस विचित्र नीति के लिये उसे बहुत सी समालोचनायें सहनी पड़ीं। राजा विलियम, जो राजा के पद को बहुत ही पवित्र समझता था, दो एक राजाओं के पदच्युत करने के भी विरुद्ध था। दूसरी ओर जर्मनी को एक बनाने के जोशीले वकील, कई राजाओं को बचा देने पर ताने मार रहे थे। बहुत से पत्रसम्पादक दक्षिणी जर्मनी को छोड़ देने पर बिस्मार्क को कोस रहे थे। किन्तु दूसरे के कहने की परवा करना उस नरसिंह की प्रकृति में नहीं था।

इस प्रकार रियासतों का निपटारा करके वह भावी उत्तर-जर्मन-सम्मिलित-राज्य के संगठन के बनाने में लग गया। सब रियासतों के प्रतिनिधि बुलाकर, उन के सामने बिस्मार्क ने अपने प्रस्ताव रखे। प्रस्ताव विचित्र थे। कालिजों के प्रोफ़ेसर और पत्रों के सम्पादक इस आशा में बैठे थे कि बिस्मार्क किसी लम्बी चौड़ी भूमिका के साथ स्वाधीनता और एकता के गुणों को दरशाकर राज्यसंगठन के सिद्धान्तों को वर्णन करेगा और फिर किन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार ही नया

संगठन पेश करेगा। किन्तु बिस्मार्क ने उन सबको निराश कर दिया। न भूमिका न सिद्धान्त। बिस्मार्क ने देशों की उस समय चलती हुई संस्थाओं को ही लेकर थोड़ा सा घटा बढ़ाकर काम चलाऊ कर दिया। सारी नई राज्य संस्था का विस्तारपूर्वक देना यहां अनावश्यक सा प्रतीत होता है। इतना ही बतला देना पर्याप्त है, कि मुख्यतया तीन सभायें थीं, जिन में सारा काम बांटा गया था। सब से पूर्व प्रशियन प्रतिनिधि सभा थी, जो प्रशिया के ही कार्यों को करने के लिये थी। उस के आगे उत्तर-जर्मन-प्रतिनिधि-सभा थी, जिस में सारे उत्तर जर्मनी के प्रतिनिधि इकट्ठे होकर सार्वदेशिक बातों पर विचार करते थे। इस में एक विशेषता यह थी कि हरएक व्यक्ति को इस के लिये प्रतिनिधि चुनने पर सम्मति देने का अधिकार था। प्रशिया का प्रधान सचिव ही सारे जर्मनी का भी प्रधान सचिव समझा जाता था।

ये तो हुईं दो प्रतिनिधि सभायें। अब इनके आगे एक सम्मिलित-राज-समिति (Federd Council) थी, जो पहली जर्मन डायट के समान थी और जिस में सब रियासतों से दो २ एक २ प्रतिनिधि आते थे। सारे उत्तर जर्मनी का असली राज्यकार्य इसी सभा के हाथ में था। बड़ी प्रतिनिधि सभा केवल धन-सम्बन्धी निश्चयों के लिये और समिति के प्रस्तावों पर पुनः विचार करने के लिये ही थी। जो व्यक्ति प्रशिया का मुख्य सचिव था, वही सारे उत्तर जर्मनी का भी मुख्य सचिव समझा जाता था और वही इस सम्मिलित-राजसमिति का सभापति बनाया गया। सब के ऊपर इस समिति का प्रधान पद था, जो प्रशिया के राजा को प्राप्त था।

यह थी संक्षिप्त सी संस्था, जो इस नये सम्मेलन की बनाई गई। इस में एक बड़ी विशेषता यह थी कि यथाशक्ति पहले से विद्यमान संस्थाओं को जीवित रखा गया था। प्रशियन-प्रतिनिधि-सभा पुरानी थी, जर्मनडायट उस से भी पहले की थी। एक जर्मन-प्रतिनिधि-सभा नई बनाई गई थी और वह आवश्यक ही थी। इस संगठन द्वारा जर्मनी की सब रियासतों को राज्यकार्य में अधिकार प्राप्त थे। प्रतिनिधि सभा में उन्हें अपनी राय देने का अधिकार था। साथ ही प्रशिया की मुख्यता स्पष्ट थी। उसका प्रधान सचिव ही सारे उत्तर जर्मनी का प्रधान सचिव और समिति का सभापति था। प्रशिया का राजा सभाओं का प्रधान था।

यह संगठन था, जो बिस्मार्क के अपने दिमाग़ की कृति थी। इसमें पुराने और नये को बड़ी बुद्धिमत्ता से मिलाया गया था। उसकी क्रियात्मक चिन्तन-शक्ति, उस की नीतिमत्ता इस संगठन में से साफ़ झलक रही है। कई लोगों की राय थी कि इस संगठन द्वारा प्रधान सचिव को राजा से भी अधिक अधिकार प्राप्त होगये थे। वही सारे जर्मनी का मुख्य कार्यकर्ता और वही राजा का प्रधान सचिव था। शेष सब राज्यकर्मचारी उस के नीचे थे। इस में सन्देह नहीं कि जर्मनी के नये संगठन में यह विशेषता पाई जाती थी किन्तु इसे एकान्ततः अच्छा या बुरा कहना असम्भव है।

दैव की गति और मनुष्य की मति विचित्र है। वह बिस्मार्क, जो एक वर्ष पहले जर्मनी २ चिल्लानेवालों को हंसता और प्रशिया के राग अलापता था, आज जर्मनी के मिलाने का साधन बना। वह प्रशिया की प्रजा, जो एक मास पहले लोगों के अधिकारों को कुचलने वाले प्रधान सचिव को फांसी देने के लिये रस्सियां तय्यार कर रहीं थी, आज आस्ट्रिया के विजेता के सिर पर विजय का सेहरा रखने के लिये उतावली हो रही थी। युद्ध के पीछे प्रशियन प्रतिनिधिसभा में प्रस्ताव किया गया कि अपनी सेना के बड़े २ अध्यक्षों को कुछ इनाम दिया जाय। बिस्मार्क सिपाही न था, इसलिये उसका नाम सूची में नहीं था। उसका एक पुराना विरोधी, जो बीसों वार सभा में उस से वाग्युद्ध कर चुका था, उठा, और उसने प्रस्ताव किया कि विजय का मुख्य हेतु बिस्मार्क है, उसे भी इनाम मिलना चाहिये। सारी सभा ने करतलध्वनि से प्रस्ताव को स्वीकार किया।

बिस्मार्क के प्रति लोकमत का जितना विरोध था, वह लहू की धाराओं से धोया गया। युद्ध से पूर्व सर्वसाधारण उसे जर्मनी को परस्पर लड़ाने वाला राक्षस समझते थे। दक्षिण जर्मनी से आये हुए एक नव युवा ने उसपर वार भी किया था, जो दैवयोग से ख़ाली गया। धमकियों की चिट्ठियां तो उसे बराबर आती ही रहती थीं। आज प्रशियन राजसभा होती है और बिस्मार्क उस में प्रस्ताव करता है कि 'पिछले तीन चार वर्षों में हम ने सेना के सुधार पर जितना व्यय किया है, वह सभा की आज्ञा के विरुद्ध था। अब वह आज्ञानुकूल तभी हो सकता

है, यदि सभा उसे स्वीकार करले।' सभा बहुसम्मति से उस व्यय को नियमानुकूल करार देती है। जो राजसभा इसी व्यय के लिये मरने मारने को तय्यार थी, आज दब जाती है। लोकमत और प्रधान-मन्त्री में जो विरोध का भाव लगा हुआ था, कूनिंग्राज़ की रणभूमि में प्रशियन सेना के जय जयकारे में वह छुप जाता है।





छठा भाग

साम्राज्यस्थापना



पहला परिच्छेद।

मित्रों में शत्रुताई।

एक युद्ध समाप्त हुआ, साथ ही जर्मनी के एकीभाव का पूर्वार्द्ध भी पूरा हुआ। उत्तरार्द्ध को पूरा करने के लिये एक और युद्ध की आवश्यकता थी।

जिस कार्य को करने के लिये बिस्मार्क उत्पन्न हुआ था, उस में अभी कसर थी। जर्मनी की उत्तरीय रियासतें मिल कर एक होगईं, आधी जाति के व्यक्तियों ने ईंटें बन कर जातीयभवन खड़ा करना प्रारम्भ कर दिया, ईंटों को परस्पर जोड़ने के लिये बीच में प्रशियावासियों के मांस और रुधिर ने गारे का काम दिया। आधा कार्य शेष था। ईंटें विद्यमान थीं, उन्हें केवल चुनने की आवश्यकता थी। नई चुनाई के लिये भी गारा अपेक्षित था। एक और महासंग्राम के बिना जर्मन जातीयता के भवन की चुनाई अधूरी ही रह जाती।

दैव की अधखुली बही में जर्मनी और फ्रांस का युद्ध लिखा हुआ था। बिस्मार्क इसे जानता था, और तीसरे नैपोलियन को भी इस आगामी युद्ध की आशंकायें होरही थीं। यह युद्ध दोनों पक्षों को अवश्यम्भावी प्रतीत होता था। इस अवश्यम्भाविता का भाव इतना बल पकड़ता गया कि धीरे २ वह इच्छा में परिणत होगया। दोनों पक्ष युद्ध चाहने लगे। सेनायें तय्यार होने लगीं, आक्रमणों के मान चित्र बनने लगे, और एक इशारा पाते ही लोहे से लोहा भिड़ गया।

जब जर्मनी निर्बल था और आस्ट्रिया प्रबल, तब फ्रांस का सम्राट् आस्ट्रिया के गौरव को कम करने की फ़िक्र में था। हम पहले फ्रांस के सम्राट् तीसरे नैपोलियन के शीलस्वभाव के विषय में कह आये हैं। छोटा नैपोलियन, अपने पूर्व पुरुषा बड़े नैपोलियन से बिल्कुल उलटा था। साहस, वीरता, रण में चतुराई और असाधारण प्रतिभा—बड़े नैपोलियन की ये विशेषतायें थीं। छोटा नैपोलियन साहसहीन और धूर्त था। वह केवल गुप्तनीतियां चलना जानता था और उनमें

भी सदा विजयी नहीं होता था। आस्ट्रिया की बढ़ी हुई शक्ति को वह फ्रांस के लिये हानिकारक समझता था। जर्मनी को उकसा कर आस्ट्रिया से भिड़ा देना हैप्सबर्ग के सौभाग्यवृक्ष को हिला देने के लिये पर्याप्त था।

अब तक छोटे नैपोलियन ने जर्मनी की सहायता की। इस सहायता में हेतु परोपकार का भाव नहीं था। प्रबल स्वार्थ ही नैपोलियन को प्रशिया के पीछे 'वाह' 'वाह' करने के लिये प्रेरित कर रहा था। वह आस्ट्रिया को गिराना चाहता था, जर्मनी को उठाना उसे अभिप्रेत न था। वस्तुतः देखें तो शक्तिशाली आस्ट्रिया की अपेक्षा, शक्तिशाली जर्मनी फ्रांस के लिये बहुत भयानक है। जर्मनी फ्रांस से मिला हुआ है, उस की सीमा साथ लगती है, आस्ट्रिया की नहीं। नैपोलियन चाहता था कि फ्रांस और आस्ट्रिया के बीच में एक ऐसा देश या देशसमूह पड़ा रहे, जो आस्ट्रिया के विस्तार को रोकने में शक्त, किन्तु स्वयं विस्तार करने में अशक्त हो। यह वही नीति थी जिससे प्रेरित होकर महान् नैपोलियन ने कान्फडरेशन आव र्हाइन की रचना की थी। छोटे नैपोलियन ने केवल आधा इतिहास पढ़ा था। उसने वह नीति तो देख ली किन्तु उसके परिणामों पर दृष्टि नहीं डाली थी। महान् नैपोलियन के अधःपात के कारणों में एक मुख्य कारण उसी कान्फडरेशन द्वारा उत्पन्न जर्मनी की संघशक्ति थी। तीसरे नैपोलियन के आगे भी वही समस्या उपस्थित हुई। जिस लाठी से वह सांप को मारना चाहता था, वह स्वयं सांप बनने लगी। जिस प्रशिया से नैपोलियन आस्ट्रिया की चढ़ती पर रुकावट लगाना चाहता था, वह स्वयं चढ़ने लगी। वह जर्मनी की उत्तरीय रियासतों के परस्पर मेल को देख कर डर गया। उसे सूझ गया कि यह तो अभी भूमिका मात्र है। जर्मनी की दक्षिणी रियासतों का इस मेल में शामिल होजाना केवल समय का प्रश्न था। कई दक्षिणी रियासतें स्वयं इस नये मेल में आना चाहती थीं। केवल बिस्मार्क की सावधानता थी, जो इस कार्य को रोक रही थी। वह नहीं चाहता था कि दक्षिणी रियासतों में अपने पैर फैला कर बवैरिया जैसी स्वाधीन रहने की इच्छा रखने वाली रियासतों को डरा दे और फ्रांस या आस्ट्रिया की ओर धकेल दे। छोटे नैपोलियन की धूर्त बुद्धि में यह बात आने लगी कि यह नया शत्रु पुराने शत्रु की अपेक्षा कहीं अधिक भयानक होगा।

विस्मार्क ही क्या होता यदि वह नैपोलियन की इस आशंका को उत्पन्न होने से पहले ही न ताड़ लेता। जर्मनी की एकता का पहला शत्रु आस्ट्रिया था, वह सीधा होगया। उस से किसी प्रकार का भय नहीं रहा। अब दूसरा शत्रु फ्रांस होगा, यह विस्मार्क को भली भांती विदित था। वह जानता था कि दक्षिणी रियासतों के जर्मन मेल में मिल जाने की सम्भावना फ्रांस के सम्राट् को पागल करदेगी। इसलिये जर्मनसेना की तय्यारी में ज़रा सी भी न्यूनता न आने पाई थी। सेना को ऐसी अवस्थिति में रखा गया था कि वह एक सप्ताह के भीतर ही भीतर फ्रांस के आक्रमण के लिये तय्यार होसके।

युद्ध अवश्यम्भावी है—यह दोनों पक्ष समझ रहे थे। एक और कारण हो गया, जिसने इस सम्भावना को इच्छा में परिणत कर दिया।

फ्रांस का सम्राट् परोपकार से प्रेरित होकर प्रशिया का साथ नहीं देरहा था, यह बताया जा चुका है। उस की नीति में दो स्वार्थ प्रधान कारण थे। एक आस्ट्रिया का शक्तिभंग करना और दूसरे अपने लिये कुछ रिश्वती माल लेना सहायता के बदले में वह कुछ भूमि चाहता था। आस्ट्रिया के साथ युद्ध प्रारम्भ होने से पहले जब विस्मार्क फ्रांस से सन्धि गांठ रहा था, तभी रिश्वत की बात चली थी। विस्मार्क ने उस समय जो स्पष्ट उत्तर दिया, उससे फ्रांस कुछ उत्साहित ही हुआ, निरुत्साहित नहीं।

कूनिंग्राज़ की लड़ाई के पीछे नैपोलियन ने चाहा कि वह दोनों देशों के बीच में पड़ कर सन्धि कराने वाला बने। उसकी पहले से ही मध्यस्थ बनने की इच्छा थी। किन्तु विस्मार्क अब निश्चिन्त था। आस्ट्रिया को जीतने के लिये फ्रांस की उदासीनता आवश्यक थी। अभीष्ट सिद्ध होगया। फ्रांस उदासीन रहा और प्रशिया का विजय हुआ। अब विस्मार्क को फ्रांस की कोई विशेष मिन्नत नहीं थी। उसने स्वतन्त्र रूप से ही आस्ट्रिया के साथ सन्धि प्रारम्भ कर दी। इस पर नैपोलियन छटपटाया। उसके दिल में यह भी विचार उत्पन्न हुआ कि कहीं सन्धि हो जाने पर विस्मार्क उसे अंगूठा न दिखा दे। इन आशंकाओं से घबराकर उसने अपने राजदूत बनडट्टी (Benedetti) को

बिस्मार्क से बदले के बारे में बातचीत करने की आज्ञा दी उस समय बिस्मार्क आस्ट्रिया के साथ सन्धि करने सन्धि--सभा की आखिरी बैठक में जारहा था। बनडट्टी के पूछने पर बिस्मार्क ने कहा कि 'मैं आप के विचार सुनने के लिये तय्यार हूं'' बनडट्टी ने बतलाया कि ''हम हाइन नदी के बांये हाथ की कुछ भूमि लेना चाहते हैं'' हाइन के बांये हाथ की भूमि जर्मन रियासतों की है। बिस्मार्क उस समय केवल इतना कह कर चला गया 'आज मेरे सामने इस प्रकार का कोई प्रस्ताव सरकारी तौर पर मत करो।' बात वहीं रह गई। आस्ट्रिया के साथ सन्धि होगई और बिस्मार्क बर्लिन लौट गया। ज्यों,ज्यों, समय बीतता गया, नैपोलियन अधीर होने लगा। उसे प्रतीत होने लगा कि बिस्मार्क ने उसे ठग लिया है। बहुत विचार के पीछे उसने अपने बर्लिन वासी राजदूत को आज्ञा दी कि वह बिस्मार्क के साथ कुछ जर्मन भूमि प्राप्त करने के विषय में पक्की बातचीत करे। बनडट्टी बिस्मार्क को जानता था। उसने नैपोलियन को यह सुझाने का यत्न किया कि बिस्मार्क इस प्रकार के प्रभाव को कभी न मानेगा। वह जर्मनी की एक हाथ भर भूमि भी देने को तय्यार न होगा। किंतु नैपोलियन अपनी बात पर डटा रहा। बिस्मार्क के क्रोध से बचने के लिये बनडट्टी ने एक पत्र द्वारा फ्रांसी गवर्मैण्ट का विचार प्रशियन महामन्त्री के पास भेजा पत्र भेजकर दो दिन वह उत्तर की प्रतीक्षा में रहा, किंतु कोई उत्तर न आया। आखिर वह उत्तर लेने के लिये स्वयं बिस्मार्क के पास गया। प्रशियन महामन्त्री ने बनडट्टी से जो बात कही वह यह थी कि 'यह सारा मामला नैपोलियन पर से हमारा विश्वास उठाता जाता है' फिर कुछ और बात चीत के पीछे बड़े जोश में आकर पूछा कि क्या फ्रांस की सरकार हम से जर्मनी की भूमि का टुकड़ा लड़ाई की धमकी देकर मांगना चाहती है ?' उत्तर मिला---'हां' 'तब युद्ध ही होगा' ये शब्द कहकर बिस्मार्क ने बात चीत समाप्त करदी और इस सारी बात की खबर समाचारपत्रों तक भी पहुंचादी।

फ्रांस जर्मनी की भूमि चाहता है, बिस्मार्क देने को तय्यार नहीं। फ्रांस ने लड़ाई की धमकी दी है, प्रशिया ने युद्ध स्वीकार कर लिया है। यह समाचार चारों ओर फैल गया। सारा जर्मनी एक ओर होगया। दक्षिणी रियासतें भी जो अभी प्रशिया के साथ नहीं मिली थीं, बिस्मार्क की नीति का समर्थन करने लगीं

उधर फ्रांस के लिये एक ही रास्ता खुला था कि वह युद्ध करता—अन्यथा उस का गौरव नष्ट हुआ जाता था। वनडट्टी सलाह लेने के लिये पैरिस को भागा गया। नैपोलियन भी वाहिर से पैरिस पहुंचा। वहुत सा विचार हुआ, जिस का परिणाम यह निकला कि फ्रांस युद्ध के लिये तय्यार नहीं है। वनडट्टी ने वर्लिन लौट कर विस्मार्क के सामने फ्रांसी सरकार की ओर से शोक प्रकट किया और कहा कि हम अपने उन प्रस्तावों को लौटाते हैं।

किसी जाति का इस से अधिक स्पष्ट नीति पराजय नहीं हो सकता। नैपोलियन की जल्दवाज़ी या कमसमझी ने विस्मार्क का हाथ वहुत ऊंचा कर दिया। प्रशिया युद्ध करने को तय्यार था-फ्रांस ने क्षमा मांगली। यह असर था, जो सव पर पड़ा। फिर वहुत दिनों तक फ्रांस की ओर से उदासीनता का इनाम देने की वात नहीं उठी।

७ अगस्त (१८६६) को वनडट्टी फिर विस्मार्क के पास पहुंचा। इनाम के प्रस्ताव नये रूप में पेश हुए। फ्रांसी राजदूतने अपनी ओर से जो वातें कहीं, उन द्वारा जर्मनी के कुछ भाग फ्रांस को मिलते थे। सुनते ही विस्मार्क की आंखें लाल होगईं, होंठ फड़कने लगे और उसने छाती ऊंची करके वनडट्टी को स्मरण कराया कि प्रशिया जर्मनी का एक अंगुलभर टुकड़ा भी किसी को न देगा। तव वनडट्टी ने दूसरी वात छेड़ी। उस ने कहा कि फ्रांस लुक्सम्वर्ग और वैल्जियम से ही सन्तुष्ट हो जायगा। लुक्सम्वर्ग उस समय इंग्लैंड के राजा के अधीन था किन्तु एक सन्धि के अनुसार उस पर कुछ समय के लिये प्रशिया का कब्ज़ा था। नैपोलियन इस वात को खूव समझता था कि लुक्सम्वर्ग फ्रांस और जर्मनी की चावी है। जिस के पास यह दुर्गम स्थान होगा, वह दूसरे पर शीघ्र आक्रमण का रास्ता निकाल सकता है। वैल्जियम भी फ्रांस और जर्मनी के मध्य में मार्ग है। इसे भी नैपोलियन चाहता था। ये दोनों स्थान इन दोनों देशों के लिये कैसे आवश्यक हैं, यह वात १९१४ के 'संसार के महाभारत' ने सिद्ध कर दिया है। जर्मनी ने इन दोनों पर पहिले कब्ज़ा कर लिया इस लिये युद्ध के आरम्भ में वह लाभ में रहा।

प्रस्ताव सुन कर विस्मार्क ने कोई निषेधसूचक शब्द न कहा। वहुत सी वातचीत के पीछे पांच शर्तें तय हुईं। विस्मार्क वोलता गया और वनडट्टी लिखता गया। वे शर्तें निम्न लिखित थीं।

(१) प्रशिया ने नये विजयों से जो भूमि प्राप्त की थी, उसे फ्रांस के सम्राट् ने प्रशिया का स्वीकार कर लिया।

(२) इस के बदले में प्रशिया का राजा फ्रांस के सम्राट् को हालैंड से कीमत या भूमि के बदले में लुकसम्बर्ग दिलाने में सहायता दे।

(३) सम्राट् ने वचन दिया कि वह जर्मनी की उत्तरीय रियासतों को दक्षिणी रियासतों के साथ मिला कर एक प्रतिनिधि परिषद् बनाने में बाधक न होगा।

(४) इस बदले में प्रशिया को वचन देना होगा कि यदि फ्रांस का स-म्राट् कभी बैल्जियम को लेना चाहे तो वह उसे अन्य शक्तियों के विरुद्ध सांग्रामिक सहायता देगा।

(५) परस्पर मेल की एक साधारण सन्धि रहे।

ये पांच शर्तें फ्रांस की ओर से पेश की हुई समझी गईं। बिस्मार्क ने उन्हें बनडट्टी के हाथ से लिखवा कर अपने पास रख लिया और बात चीत समाप्त की बनडट्टी उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। किन्तु वह प्रतीक्षित उत्तर कभी न आया बिस्मार्क ने फिर कभी सन्धि की बात न छेड़ी। बनडट्टी ने कई बार चाहा किंतु बिस्मार्क टालता रहा। फ्रांस की गर्दन उस के हाथ में थी। ऊपर की शर्तों में से दो द्वारा फ्रांस ऐसे दो स्थान उड़ाना चाहता था जो उस के नहीं थे। इस लूट के काम में वह प्रशिया से सहायता चाहता था। इस का लिखित प्रमाण बिस्मार्क ने अपने पास रख लिया, ताकि अवसर पाते ही संसार को दिखादे कि फ्रांस की क्या इच्छायें हैं। जब चार वर्ष पीछे युद्ध छिड़गया तब बिस्मार्क ने बनडट्टी के हाथ की लिखी हुई शर्तें प्रकाशित करदीं। योरप में जो थोड़ी बहुत सहानुभूति फ्रांस के लिये शेष थी, वह भी इस चाल से जाती रही।

इधर बिस्मार्क ऐसी दशा में होगया कि उसे फ्रांस की आवश्यकता न रही। आस्ट्रिया से उस की पक्की सन्धि होचुकी थी। दक्षिणी रियासतों के साथ उसने व्यापारसंधि दृढ़ करली थी। रूस का ज़ार प्रशिया के विजयों से ज़रा घबरा गया था, उस के पास विशेष दूत भेज कर मामला ठण्डा करा दिया गया था। अब प्रशिया को किसी ओर से भय न था। एक ओर छोटा नैपोलियन था और दूसरी ओर महान् बिस्मार्क। देखिये क्या होता है!

दूसरा परिच्छेद।

सूखे घास में चिनगारी

आस्ट्रिया के मकान की बढ़ती रोकने के लिये तीसरे नैपोलियन ने जर्मनी की दीवार बनानी चाही। किन्तु जब वह बना चुका तो उसने देखा कि दीवार बनाते २ एक नया मकान ही बन गया। साथ ही उसे यह भी प्रतीत होने लगा कि यह नया मकान आस्ट्रिया के साम्राज्यभवन से कहीं बड़ा और दृढ़ बन जायगा। तब उसे भय प्रतीत होने लगा। उसके दिल में यह विचार दृढ़ हो गया कि अब इस नये मकान को गिराये विना निस्तारा नहीं।

बिस्मार्क इस बात को ताड़ गया। उसने समझ लिया कि जर्मनी का एक होना नैपोलियन से सहन न किया जायगा। ईर्ष्यालु बुद्धि नित नये शिकार ढूंढा करती है। नैपोलियन की ईर्ष्यालु बुद्धि से बिस्मार्क खूब परिचित हो चुका था। उसे निश्चय हो चुका था, कि फ्रांस का मानमर्दन किये बिना वह जर्मनी की दक्षिणी रियासतों को प्रशिया की छत्रच्छाया में लाकर जर्मन बिरादरी में नहीं मिला सकता।

दोनों ही पक्ष एक दूसरे को राजनीतिक दृष्टि से नीचा दिखाने का, और धमकाने का यत्न करने लगे। दोनों पक्षों ने अपनी मिलती हुई सीमाओं को दृष्टि में रखकर सेनाओं को तय्यार करना प्रारम्भ कर दिया। दोनों ही पक्ष इस ताक में रहने लगे कि कब मौका आवे, कब दूसरा पक्ष कोई भारी भूल करे, और कब ऐसी लड़ाई छेड़ने का अवसर आय, जिससे योरप की सहानुभूति अपनी ओर रहे। बहादुर अपने घोड़े पर सवार थे, सिपाहियाना वेष में कसर नहीं थी, तलवार की मुट्ठी पर हाथ था, केवल देर थी इशारे की। दोनों बहादुर अवसर ताक रहे थे। नैपोलियन फ्रांस में लहू भरी क्रान्ति करके लोकमत से सम्राट् हुआ था, वह जानता था कि यदि लोगों को चमकीले विजयों का दृश्य न दिखाया गया तो उसकी खैर नहीं, इसलिये वह उत्सुकता से लड़ाई की प्रतीक्षा कर रहा

था। उधर विस्मार्क नहीं जानता था कि लोकमत किस दिन उसे मुख्य मन्त्री पद से जुदा करवादे, उसे यह भी डर था कि कहीं अगले ही साल उदारदल ज़ोर पकड कर सेना का बजट कम न करादे। वह भी चाहता था कि अगर युद्ध होना ही है तो शीघ्र हो जाय।

घास फूस की ढेरियां लग चुकी थीं, धूप ने उन्हें खूब सुखा दिया था, केवल एक चिनगारी की और आवश्यकता थी, वह आवश्यकता भी शीघ्र ही पूरी हो गई।

१८६९ में स्पेन का राजसिंहासन ख़ाली हो गया। ख़ाली होने का कारण गवर्मेण्ट का अत्याचार था। वहां की रानी इसाबल २५ साल तक स्पेन को अपनी पतित वृत्तियों का क्रीडाक्षेत्र बनाकर अन्त को भाग निकली। १८४३ में जब वह बालिग़ करार दी गई और राज्य का कार्य करने लगी, दैव ने उसी समय छींक दिया था। उसके राज्य का पहला मन्त्री औल्ज़ागा नाम का एक वक्ता बनाया गया था, जो पहले रानी का शिक्षक रह चुका था। नये राजमन्त्री ने पहला विचार प्रजा की राज सभा (Cortes) को विसर्जित करने का किया। उसके लिये रानी की आज्ञा लेना आवश्यक था। जब आज्ञा ली जा चुकी तो रानी ने कहा कि इस आज्ञा पर मुझसे शारीरिक दबाव डालकर हस्ताक्षर कराये गये हैं। मन्त्री को त्यागपत्र देना पड़ा और रानी ने नया मन्त्री चुना। यह केवल प्रारम्भ था। रानी इसाबल ने अपने पिता से मूर्खता प्राप्त की थी और माता के निर्बल आचारों ने उसके अंग अंग में घर किया हुआ था। यदि कोई स्त्री राज्य करने के सर्वथा अयोग्य हो सकती थी तो वह इसाबल थी। ऐसी रानियों ने राज्य किये हैं जिन के आचरण शिथिल हों, उन्हें उनकी कार्यकुशलता और उत्साहशक्ति थोड़ा बहुत कृतकार्य बनाती रही है। कई निर्बल और सरल स्वभाव रानियां भी केवल शुद्ध आचरणों के भरोसे राज्य करने में सफलयत्न हुई हैं। इसाबल मूर्ख भी थी और दुराचारिणी भी। उसका विवाह यदि किसी शक्तिशाली पुरुष से हो जाता तो भी ठीक होता। कृत्रिमयत्न से स्वभाव के दोष का परिमार्जन हो सकता था किंतु वह भी न हुआ। उसका विवाह एक ऐसे व्यक्ति से किया गया जो शरीर से कृश और आचरणों से भ्रष्ट था। विवाह के थोड़े ही दिन पश्चात् पति

पत्नी में झगड़ा हो गया और राजमहल गन्दी अफ़वाहों की रंगस्थली बनगया। रानी वारी वारी से एक एक प्रेमी को अपने साथ रखने और जागीरें बख़्शने लगी। सारे राज्य का भाग्य रानी के नये नये प्रेमियों के स्वभाव पर आश्रित रहने लगा। कोई भी मन्त्री साल डेढ़ साल तक राज्य न करने पाता था। उदार विचार वालों से इसावल डरती थी, मध्यम विचारवालों को वह अपने काम का न समझती थी, और इतनी उसमें शक्ति नहीं थी, कि वह अनुदार मन्त्रियों को प्रजा के असंतोष के विरुद्ध सहारा दे सके।

प्रजा प्रतिदिन असन्तुष्ट होने लगी। असन्तोप को दबाने के लिये राज्य की ओर से खूब कठोरतायें की गईं। देश भक्तों को देश से बाहिर निकाला गया; सभासमितियों के करने के अधिकार छीन लिये गये और प्रेस की स्वाधीनता का गला घोंट दिया गया। इन सब अत्याचारों ने प्रजा के असन्तोष में घृत की आहुति का काम दिया।

१८६९ के सितम्बर मास ने स्पेन को राज्यक्रान्ति के प्रवाह में स्नान करते हुए पाया। सर्रेनो और प्रिम नाम के मुखियाओं के साथ सारी सेना एक भाव से प्रेरित हो कर राजसभा को तोड़ देने के लिये कटिबद्ध होगई। दुराचारों से कृशीभूत इसाबल अपनी जान बचा कर भाग निकली। प्रजापक्ष की जीत हुई, उस समय के लिये सर्रेनो को अध्यक्ष निश्चित किया गया; और नया राजा ढूंढने का काम जनरल प्रिम को सौंपा गया। स्पेन का राजा बनना कोई सहज काम नहीं था। किसी से भूला नहीं था कि नैपोलियन को स्पेन का नया राज्य ही ले डूबा था। न वह जोज़फ़ को राजा बना कर मैड्रिड भेजता और न उसे एल्बाद्वीप की सैर करनी पड़ती। सब राजपुत्र स्पेन के राजा बनने से भय खाते थे। राजा बनकर प्रजा से लड़ने का भय उस प्रलोभन से कहीं अधिक प्रबल था, जो किसी देश के राज्य के लिये दिया जा सकता है।

उन आधे दर्जन भर राजपुत्रों में से, जिनसे स्पेन के राजा बनने के लिये प्रार्थना की गई थी, एक राजकुमार लियोपोल्ड भी था। यह राजकुमार उस राजा चार्लस का लड़का था, जो हौहिन्ज़ौलर्न परिवार की एक शाखा का मुखिया समझा जाता था। राजा चार्लस या प्रिंस हौहिन्ज़ौलर्न

अपने आपको प्रशिया के राजा के अर्पण कर चुका था, और उसका प्रधान मन्त्री भी रह चुका था। वह प्रशिया के राजा को अपने परिवार का प्रधान व्यक्ति समझता था। जब स्पेन की राजगद्दी पर बैठने के लिये कुमार लियो-पोल्ड से कहा गया तो उसके पिताने प्रशिया के राजा से पूछना आवश्यक स-मझा। बात साधारण सी प्रतीत होती थी, परन्तु उसका फल बड़ा भारी निकला। राजकुमार लियोपोल्ड का स्पेन की गद्दी पर बैठने का प्रभाव फ्रांस और प्रशिया की प्रधानता के झगड़े के रूप में परिवर्तित होगया। इस मनोरंजक घटना चक्र का इतिहास भी संसार की विचित्रतम कहानियों में से गिना जाने योग्य है।

कुँवर लियोपोल्ड हौहिनज़ोलर्न वंश में से था, और यही वंश प्रशिया में राज्य कर रहा था। इस वंश के राजकुमार का स्पेन की गद्दी पर बैठना प्र-शिया के लिये कई प्रकार से लाभदायक हो सकता था। किसी अन्य देश से लड़ाई होने पर प्रशिया का राजा स्पेन से सहायता की आशा रख सकता था, व्यापार में दोनों देश एक दूसरे को सुलभता दे सकते थे। इन लाभों के अति-रिक्त एक और भी कारण था, जो प्रशिया का ध्यान इस प्रस्ताव की ओर विशेषतया खेंच रहा था। गत पचीस वर्षों से फ्रांस के राजनीतिज्ञ यत्न कर रहे थे कि वे किसी प्रकार स्पेन के राज्य पर अपना प्रभाव जमालें। रानी इसा-बल के विवाह का प्रश्न लेकर पहले फ्रांस के लूईफिलिप ने और फिर दूसरी वार तीसरे नैपोलियन ने बहुत से यत्न किये थे किन्तु उन्हें सफलता प्राप्त न होसकी। पहले नैपोलियन के समय से ही फ्रांस का यत्न होरहा था कि स्पेन को अपने साथ साधारण सन्धि की अपेक्षा अधिक पक्के बन्धनों से जोड़ ले। जो अव-सर फ्रांस को न मिल सका, प्रशिया को वह स्वयमेव प्राप्त होरहा था। हौहिनज़ोलर्न वंश के कुमार का स्पेन की गद्दी पर बैठना फ्रांस के गौरव को बहुत बड़ा धक्का पहुंचा सकता था।

प्रस्ताव होते ही यह बात बिल्कुल स्पष्ट होगई कि फ्रांस कभी इस कार्य को न होने देगा। फ्रांस के राजदूतों ने स्पेन में पूछ ताछ की तो उन्हें उत्तर मिला कि 'अभी इस विषय में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता' इधर कुंवर लियोपोल्ड से पूछा गया तो उसने कहा कि प्रशिया का राजा यदि अनुमति दे देगा तो मैं स्पेन की गद्दी पर बैठना स्वीकार कर लूंगा? उसका ऐसा विचार स्वाभाविक

था। वह राजा होकर फ्रांस की ओर से प्रेमयुक्त व्यवहार की आशा नहीं रख सकता था उस दशा में प्रशिया की ओर से सहायता आवश्यक थी। वह प्रशिया के राजा की ओर से केवल 'मौनमर्धस्वीकारे' के अनुसार मौनमात्र न चाहता था। उसने स्पेन वालों को जता दिया था कि उसे तो विलियम की ओर से आज्ञा चाहिये।

राजा विलियम स्पष्टवादी और सरल स्वभ योद्धा था। वह छल चालाकी पसन्द नहीं करता था। उसने स्पष्टतया कह दिया कि प्रशिया इस विषय में कुछ नहीं कह सकता ? कुंवर को उसने पूछाजाने पर उत्तर दिया कि 'यह मामला बिल्कुल स्पेन और कुंवर का है, प्रशिया इसमें कोई दखल न देगा। विलियम नहीं चाहता था कि स्पेन के कारण फ्रांस से लड़ाई गांठे। दूसरी ओर वह यह भी नहीं दिखाना चाहता था कि फ्रांस के भय से ही वह आज्ञा नहीं देता। इसलिये वह इसी बात पर स्थिर रहा कि मामला स्पेन और कुंवर का है—वह कोई दखल न देगा। स्पेन की सरकार ने जब आज्ञा लेने के लिये अपना राजदूत भेजा तो विलियम उससे मिला भी नहीं।

विलियम और कुंवर लियोपोल्ड अनिच्छुक थे, किन्तु वे क्या चीज़ थे ? प्रशिया में तो एक और ही इच्छाशक्ति काम कर रही थी, जिसके सामने और सब शक्तियां झुक रही थीं। वह इच्छाशक्ति किसी और ही बात पर तुली हुई थी। बिस्मार्क इस प्रस्ताव के उठते ही निश्चय कर बैठा था कि चाहे कुछ हो, स्पेन की गद्दी तो हौहिनज़ौलर्न के हाथ में ही आनी चाहिये। साथ ही उसने यह भी निर्धारित कर लिया था कि जहां तक होसके इस कार्य की पूर्ति सरकारी तौर पर न होनी चाहिये। प्रशियन सरकार के बीच में पड़ने से फ्रांस का झगड़ा उठाने का सीधा बहाना मिल जायगा, इसलिये वह व्यक्तिगत दबाव से ही सब काम कराना चाहता था। वह स्पेन के राजदूतों को कई बार मिला—किन्तु निज़ू तौर पर। कुंवर की अनिच्छा को तो तोड़ने के लिये उसने बहुत से यत्न किये। कुंवर को और उसके पिता को स्पेन की गद्दी लेने के बहुत से लाभ समझाये और प्रशिया की सहानुभूति का विश्वास दिलाया। महीनों के व्यर्थ परिश्रम के पश्चात्, अन्त, को बिस्मार्क सफलयत्न हुआ। कुंवर ने

स्पेन की गद्दी पर बैठना स्वीकार कर लिया। अब शेष रहगया विलियम। अपने राजा की सम्मति बदलने के लिये बिस्मार्क को बहुत अधिक यत्न करना पड़ा। वह स्वयं राजा के ऊपर दबाव डाल कर कोई काम कराना ठीक नहीं समझता था, कम से कम वह दिखाना यही चाहता था कि राजा से वह दबाव द्वारा कोई काम नहीं करा रहा। उसने विलियम की अनिच्छा को तोड़ने के लिये प्रशिया के राजकुमार फ्रेडरिक को पिता के पास भेजा। घंटों तक थकाने वाली कोशिश के पीछे राजकुमार को इतनी सफलता प्राप्त होगई कि राजा ने कुंवर लियोपोल्ड की इच्छा होने पर निषेध न करने का वायदा किया। इतना ही पर्याप्त था। बिस्मार्क ने झट पट स्पेन के राजदूतों को राजकुमार लियोपोल्ड से मिलादिया। आपस में लिखा पढ़ी हो गई, और देर केवल स्पेन की कोर्टिज़ (पार्लीमेण्ट) में अन्तिमनिश्चय की रह गई। बिस्मार्क की नीति का विजय हुआ। प्रशिया की बात रह गई। फ्रांस ने वार वार अपनी अप्रसन्नता प्रकट की, किन्तु उसे कोई सफलता न हुई। बिस्मार्क जानता था कि इस चुनाव के पक्का होते ही फ्रांस की ओर से क्रोध का फव्वारा छोड़ा जायगा। वह चाहता था कि इस सारे मामले से प्रशियन सरकार का कोई सम्बन्ध न समझा जाय। मामला तय होते ही वह बर्लिन छोड़ कर अपने ग्राम्य विश्रामस्थान वर्जिन (Varzin) को चला गया। राजा विलियम ने भी स्वास्थ्य को ठीक करने के लिये एम्स की रमणीय जलवायु में विहार करना ही उचित समझा।

रामचन्द्र के अभिषेक की पूरी तय्यारियां होचुकी थीं, जब पापमाया ने मन्थरा के चित्त में प्रवेश करके सब चौपट करदिया। संसार का इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है। एक पत्थर के अकस्मात् खिसक जाने पर सारा पर्वत गिर सकता है और नगरों और ग्रामों को तबाह करसकता है। एक छोटी सी भूल, एक अस्पष्ट शब्द और एक आकस्मिक चेष्टा खून की नदियां बहा देने के लिये पर्याप्त हो जाती हैं। मनुष्य का बनाया हुआ कल्पनासंसार क्षणभर में हवा होजाता है। जो नहीं सोचा था, जिसकी धुंधली कल्पना भी नहीं की थी, वह आंखों के सन्मुख आजाता है। उस समय ही अल्पशक्ति मनुष्य को अपनी अल्पशक्ति का भान होता है, मानुषिक बल के ऊपर काम करते हुए एक दैवीबल का ज्ञान

होने लगता है और चन्द्रगुप्त और नैपोलियन जैसे पराक्रमशालियों के मुंह से भी 'हा दैव' का शब्द निकलवा देता है।

यहां भी ऐसा ही हुआ। स्पेन के राज्याधिकारियों में भावी राजा के विषय में भिन्न २ मत थे। कई लोग कुंवर लियोपोल्ड के चुनाव के विरुद्ध थे। कोर्टिज़ के लिये भी कोई उत्तरदाता नहीं हो सकता था। जनरल प्रिम यही चाहता था कि यह प्रस्ताव एकदम उसी समय सभा में पेश कर दिया जाय। अन्य कोई व्यक्ति अभी राजा बनने के लिये तय्यार नहीं है, इस लिये अराजकता का भय दिखलाकर कोर्टिज़ में लियोपोल्ड का चुनाव स्वीकृत करवा लेना कठिन नहीं होगा। बर्लिन में बातचीत होजाने पर स्पेन के राजदूत ने तार दी, जिस का तात्पर्य यह था कि लियोपोल्ड ने स्वीकार कर लिया है, कोर्टिज़ को विसर्जित न किया जाय। तार पढ़ने में भूल होगई। भाव उलटा समझ कर कोर्टिज़ को विसर्जित कर दिया गया। बात महीनों पीछे जा पड़ी। उधर फ्रांस की सरकार ने स्वीकृति का समाचार पाते ही रुद्ररूप धारण कर लिया। स्पेन को धमकियां मिलने लगीं। घबरा कर जनरल प्रिम ने लियोपोल्ड के चुनाव को रद्द करने का विचार कर लिया। कुंवर ने यह सब कुछ सुनते ही अपनी उम्मेदवारी लौटाली और घोषणा देदी कि वह राजा नहीं होना चाहता। वह ऐसी अड़चन में पड़कर स्पेन वालों के लिये आपत्ति का हेतु नहीं होना चाहता था।

इस घटना ने विजय का पलड़ा बिल्कुल पलट दिया। बिस्मार्क अपनी नीति का विजय समझ कर विश्राम करने चला गया था। उसने दिल में समझ लिया था कि अब लियोपोल्ड स्पेन का राजा हो ही जायगा। इस से फ्रांस खिजेगा, और अपने राजदूतों को बर्लिन में भेजेगा। वहां किसी को न पाकर स्पेन से ही लड़ाई छेड़लेगा। इसमें बिस्मार्क को जर्मनी का बहुत लाभ दीखता था। इन सब मंसूबों पर पानी फिर गया। इतना ही नहीं। सारे योरप के सामने जर्मनी को नीचा देखना पड़ा। सैकड़ों यत्न करने पर भी बिस्मार्क इस बात को न छिपा सकता था कि स्पेन की गद्दी पर लियोपोल्ड के बिठाने में प्रशिया का विशेष हाथ है। प्रशिया ने यत्नपूर्वक इस चुनाव को स्वीकृत कराया—फ्रांस ने धमकी दी—और चुनाव रद्द होगया। इस से बढ़कर प्रशिया की हार का और

फ्रांस की जीत का क्या उदाहरण हो सकता था। लियोपोल्ड के इन्कार ने बिस्मार्क के सिर पर मानों वज्र डाल दिया। प्रशिया के इस नीतिपराजय का सहन करना उसके लिये असम्भव होगया। यह निश्चय करके कि अब या तो यह पराजय खून से धुलेगा और या वह सदा के लिये प्रशिया के मुख्य मन्त्रिपद से छुट्टी लेगा, बिस्मार्क बर्लिन आया। वहां आकर उस की हिम्मत और भी टूट गई। सारी प्रजा पर इस नीतिक पराजय के समाचार से शोक छाया हुआ था। बर्लिन के समाचारपत्र फीके पड़े हुए थे, राज्याधिकारी भी लज्जित से थे। यह सब कुछ देखकर बिस्मार्क ने त्यागपत्र देने का ही निश्चय किया।

प्रशिया के सिर पर पराजय के जो बादल मंडरा रहे थे, उन्हें छिन्न भिन्न करने का भार दैव ने फ्रांस पर ही डाला। उस समय फ्रांस के शासन का कार्य योग्य कन्धों पर नहीं था। छोटा नैपोलियन और उसके मन्त्री भूलें करते २ थके नहीं थे। अभीतक जो भूलें उन्होंने कीं, उनका कोई भयानक परिणाम नहीं हुआ किन्तु वे उतने से सन्तुष्ट नहीं थे। उनकी समझ में यह बात नहीं आई कि बिस्मार्क को उस के ही अखाड़े में पछाड़ कर उन्होंने कितना भारी काम कर लिया है। राजनीति बिस्मार्क का खास अखाड़ा था, उसने वहीं पछाड़ खाई। फ्रांस के बाह्यसचिव ने अवसर पाकर प्रशिया को और भी धूल में मिलाना चाहा राजदूत बनडट्टी को आज्ञा दीगई कि वह राजा विलियम के पास जाय और उस से यह वचन ले कि आगे भी कभी होहिन्दूज़ौलर्न वंश का राजकुमार स्पेन की गद्दी के लिये उम्मेदवार न बनेगा। ऐसा वचन लेने से कई लाभ सोचे गये थे। एक तो यह स्पष्ट हो जायगा कि स्पेन के उम्मेदवारों में प्रशिया की सरकार का भी कुछ हाथ था, और दूसरे प्रशिया को बड़ी भारी शर्म उठानी पड़ेगी।

राजा विलियम जलौषध करने के लिये एम्स गया हुआ था बनडट्टी अपनी गवर्मेण्ट की आज्ञा पाकर वहीं पहुंचा। प्रातःकाल का समय था, विलियम जलौषध ले रहा था, बनडट्टी उसी समय वहां पहुंच गया। यह रीति के विरुद्ध था। राजा के विश्राम में विघ्न डालने का किसी को अधिकार नहीं था। किन्तु विलियम बहुत भला मानस था, उसने उस समय भी बनडट्टी का तिरस्कार नहीं किया। दोनों में बात चीत होने लगी तो राजाने बनडट्टी को बतलादिया कि कुंवर लियोपोल्ड की उम्मेदवारी

में प्रशिया की सरकार या राजा का कोई सम्बन्ध नहीं था। बनडट्टी ने जब भविष्यत् के लिये वचन मांगा तो राजा ने उत्तर दिया कि 'कुंवर ने स्वयमेव गद्दी लेने से इन्कार करदिया है। अब और किसी प्रकार का वचन देने की आवश्यकता नहीं' उस समय बातचीत यहीं तक रही। बनडट्टी ने फिर राजा से मिलना चाहा, किन्तु राजा ने अपने एक विश्वासपात्र व्यक्ति द्वारा कहला भेजा कि 'कुंवर ने अपने निषेध का पत्र भी भेज दिया है। अब इस विषय में और बात चीत न होगी।' एम्स से बर्लिन को जाने के समय विलियम ने स्टेशन पर बनडट्टी को बुलाया किन्तु इस विषय में कोई बातचीत नहीं की। बनडट्टी निराश होकर लौट आया। फ्रांसी सरकार के इस अनुचित धमकी देने वाले व्यवहार ने शान्तप्रकृति विलियम को भी कुछ उत्तेजित करदिया। उसने सारी घटना तार द्वारा बिस्मार्क के पास बर्लिन भेजदी, और साथ यह भी लिखदिया कि इस घटना का जैसा भी उपयोग बिस्मार्क करना चाहे, कर सकता है।

बिस्मार्क प्रशिया के अपमान से खिन्न और उदास होकर अपने मित्र रून और मौल्के के साथ बात चीत कर रहा था। उसी समय तार पहुंची। इस तार ने पहले तो उस की उदासी को और भी बढ़ा दिया किन्तु झटपट उसे एक बात फुर आई। क्या इस तार का उपयोग लेकर हम प्रशिया का अपमान लहू से नहीं धो सकते? यह प्रश्न मन में उठते ही उसने फौन मौल्के से पूछा कि क्या हमारी सेना फ्रांस से युद्ध करने के लिये सर्वथा उद्यत है? मौल्के ने उत्तर दिया कि 'भविष्यत् के विषय में निश्चय से तो कुछ नहीं कहा जासकता, हां सेना सर्वथा तैयार है' बिस्मार्क पास के कमरे में चलागया और वहां जाकर उस तार के कुछ शब्द अदल बदल कर एक समाचार घड़ा गया। इस समाचार में कोई झूठी बात नहीं थी, किन्तु उस की रचना ऐसे ढंग से की गई थी कि उसे सुनते ही मौल्के कह उठा कि 'पहले तो यह पीठ दिखाने के समान था और अब धावे के समान है।' समाचार में यह बताया गया था कि फ्रांसी सरकार ने प्रशिया के राजा के आराम की कोई परवा न करके अपने राजदूत को एम्स भेजा, जिसने राजा के पास जाकर अपमानजनक प्रस्ताव किये। राजा ने कइ लोगों के सामने बनडट्टी की ओर पीठ मोड़ली। यह समाचार उसी समय बर्लिन और फ्रांस के समाचारपत्रों में भेज दिया गया।

इस समाचार का असर वही हुआ जो बिस्मार्क को अभिप्रेत था। बिस्मार्क ने यह दुधारी तलवार चलाई थी। सारा जर्मनी एक दम भड़क उठा, क्योंकि फ्रांस के राजदूत ने उनके राजा का अपमान करने की हिम्मत की। फ्रांस की प्रजा भी आग बबूला होगई क्योंकि उनके दूत का विलियम ने अपमान किया दोनों देशों के समाचारपत्र मारू राग गाने लगे। सभासमितियों में जातीय गीत सुन २ कर लोग सिर हिलाने लगे। दोनों जातियां युद्ध करने के लिये उतावली होने लगीं। अब ठण्डे दिमाग़ का काम था। लड़ाई का होना ज़रूरी था, पर प्रारम्भ कौन करे? प्रशिया के पास युद्ध प्रारम्भ करने के लिये पर्याप्त बहाना था, किन्तु बिस्मार्क का सिद्धान्त था कि अपनी जाति को संग्राम की उत्तरदातृता से बचाये रखना प्रत्येक राजनीतिज्ञ का कर्तव्य है। उसने धैर्य से काम लिया। वह फ्रांस निवासियों की जोशीली प्रकृति से अभिज्ञ था और निश्चयपूर्वक जानता था कि फ्रांस को शीघ्र ही युद्ध की घोषणा देनी पड़ेगी। १५ जुलाई (१८७०) के दिन फ्रांस ने प्रशिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा देदी।

तीसरा परिच्छेद।

फ्रांस जर्मनी युद्ध।

युद्ध से पूर्व बिस्मार्क ने अपने युद्धसचिव फौन मौल्के से सेनाकी तय्यारी के विषय में पूछा तो उसे उत्तर मिला था कि 'भविष्यत् के विषय में निश्चय से तो कुछ नहीं कहा जा सकता, हां, सेना सर्वथा तय्यार हैं।' युद्धघोषणा के समय फ्रांस के सेनासचिव से जब फ्रांसी सेना की तय्यारी के विषय में पूछागया तो उसने उत्तर दिया था कि 'सिपाहियों के कोट में एक बटन की भी कमी नहीं है।' जिसका तात्पर्य यह था कि सेना की तय्यारी में एक अणुमात्र की भी कमी नहीं है।' दोनों पक्ष अपनी दृष्टि में पूरी तरह उद्यत थे किन्तु युद्धघोषणा के दो दिन पीछे ही कहने वालों को पता लगगया कि उनके कथन में थोड़ा सा दोष था। पहले वक्ता ने थोड़ी सी कसर नफ़सी की थी, और दूसरे वक्ता ने बहुत सी अत्युक्ति से काम लिया था। यह कहने में अत्युक्ति नहीं है कि फौन मौल्के ने इस समय जो सेनारूपी हथियार फ्रांस के मृदुकाय पर फेंका था, वह अपूर्व था। अभ्यास, अस्त्र, शस्त्र, नियम और वीरता आदि जितने गुणों की सेना को आवश्यकता होती है, उनकी पर्याप्त राशि विद्यमान थी। दूसरी ओर फ्रांस के युद्ध सचिव के वाक्यमें कई गुणा अत्युक्ति थी। दो चार दिनों ने ही सिद्ध करदिया कि फ्रांसी सेना में केवल बटनों की नहीं, बटन पहिनने वालों की भी कमी थी। युद्धकी घोषणा देने से पूर्व सम्राट् नैपोलियन को बताया गया था कि फ्रांस बात की बात में तीन लाख सेना एकत्र करके जर्मनी की दक्षिणी रियासतों पर धावा कर सकता है। जब समय आया तो कठिनता से १८६००० सिपाही एकत्र किये जासके।

जो लोग किसी पक्ष के नहीं थे, और पेरिस का जनसमूह तालियां पीटकर जिन की बुद्धियों को चक्कर नहीं दे रहा था, वे जानते थे कि फ्रांस की सेना युद्ध के योग्य नहीं है। सारी फ्रेंच सेना में एक भी अच्छा सेनापति नहीं था। तीसरा नैपोलियन युद्धकला से सर्वथा अज्ञ था, प्रधान सेनापति बजेन, जिस पर नैपोलियन को बड़ा विश्वास था, अनुभवी था, किन्तु युद्धविद्या में निपुण नहीं

था। उस का सब से बड़ा बहादुरी का काम यह था कि वह फ्रेंचसेना को मैक्सिको से सुरक्षित दशा में लौटा लाया था। दूसरे दर्जे पर एम. माहोन था, जिस की वीरता में किसी को भी सन्देह नहीं था किन्तु बड़े युद्ध को चलाने और बड़ी सेनाओं को हिलाने में भी वह प्रवीण हो सकेगा या नहीं, यह निश्चित नहीं था। फ्रेंचसेना में जो व्यक्ति उच्च अधिकारों पर पहुंच गये थे, वे अपने गुणों से नहीं, तीसरे नैपोलियन की कृपा से पहुंचे थे। कोई सेनापति नैपोलियन के जितना पक्ष में था, वह उतना ही उच्च अधिकारी बनाया जाता था।

सिपाही भी युद्ध करने की दशा में नहीं थे, नैपोलियन जिस क्रान्ति से राजा बना था, उस में सिपाहियों का विशेष हाथ था, इसलिये उन्हें आराम देना आवश्यक समझा जाता था। जब सेना चलती थी, रात को सोने के लिये तंबोटियां साथ चलती थीं। आराम में पले हुए सिपाही क्या युद्ध कर सकते थे? एक नये ढंग की बन्दूक सिपाहियों को दी गई, जो यदि व्यवहार में लाई जा सकती तो फ्रांस की सेना लाभ में रहती। समय आने पर पता लगा कि सिपाहियों को अभी उस बन्दूक के चलाने का अभ्यास ही नहीं है। सिपाहियों की क्या दशा है, इस का अफसरों को कोई ज्ञान नहीं था। यह बात सारे योरुप में विदित थी कि फ्रेंच सेना में सिपाहियों और अफसरों में परस्पर कोई प्रेम सम्बन्ध नहीं है! सेना के लिये गोली बारूद और भोजन छादन की वस्तुओं का युद्ध-स्थल में पहुंचाना जिस विभाग के अधीन था, वह बिल्कुल बिगड़ा हुआ था। जहां गोली बारूद की आवश्यकता नहीं थी वहां ढेर के ढेर पड़े रहते थे, और जहां आवश्यकता थी वहां अफसर लोग हाथ मलते रह जाते थे। सेनापतियों को परस्पर कोई विश्वास नहीं था। एक का दूसरे पर भरोसा नहीं था, और परस्पर विश्वास ही युद्ध में कृतकार्यता की चाबी है।

जिस सेना की यह दशा हो, वहां विजय की आशा यदि कोई कर सकता है तो तीसरे नैपोलियन जैसा अल्पज्ञ व्यक्ति ही। युद्ध की घोषणा से पहिले नैपोलियन को विजय की पूरी आशा थी, घोषणा के पीछे एक चौथाई कम हो गई। जब वह २८ जुलाई को युद्धसेना का नायकत्व करने के लिये पेरिस से रवाना होकर मेत्स स्थान पर पहुंचा, और सेना की वास्तविक दशा उस की दृष्टि में

आई तो विजय की आशा का और एक चौथाई भाग रफूचक्कर होगया । जब फ्रैंचसेना के अगले भाग का, मुख्यजर्मनसेना के अगले भाग से सामना हुआ तो विजयाशा केवल एक चौथाई रहगई, और सेडान के युद्ध ने न केवल नैपो-लियन की अपितु सारे फ्रांस की भी आंखें खोल दीं ।

दूसरी ओर जर्मनी की सेना थी, जिसे यदि नेताओं की दृष्टि से और अभ्यास और सामान की दृष्टि से सर्वाङ्गपूर्ण कहा जाय तो अशुद्ध न होगा । एक आत्मा थी, जो सारी सेना में काम कर रही थी । एक उद्देश्य था, जो सब सिपाहियों को हिला रहा था । प्रशिया के नेतृत्व में सारा जर्मनी देश फ्रांस से अपना पुराना हिसाब चुकाना चाहता था । जर्मन लेखकों के शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि १८७० का युद्ध भयानक बदले का युद्ध था । सारा जर्मनी एकचित्त हो कर बदला लेने के लिये तय्यार था । पहले नैपोलियन के ऋण का परिशोध तीसरे नैपोलियन से कराया जाने वाला था ।

नैपोलियन ने केवल अपनी सेना की दशा जानने में ही भूल नहीं की थी । और भी एक बड़ी अशुद्ध सम्मति थी, जिसने उसे भयावने भंवर में लेजा पटका । नैपोलियन को विश्वास था कि जर्मनी का सताया हुआ आस्ट्रिया शीघ्र ही सम-य पाकर फ्रांस से आमिलेगा । इसी प्रयोजन से २८ जुलाई के दिन वीना में दोनों देशों के राजदूतों की बात चीत होकर निश्चय हुआ था कि युद्ध के आरम्भ में आस्ट्रिया उदासीन रहे । दो बातों में से किसी एक के होने पर वह युद्ध में भाग लेगा । या तो रूस जर्मनी की ओर से युद्ध में आमिले और या ता० १५ सितम्बर तक फ्रांस जर्मनी के दक्षिणी विभाग में अपनी प्रधानता जमा ले । यह स्पष्ट हो गया था कि यदि युद्ध के प्रारम्भ में फ्रांस की जीत रहेगी तो आस्ट्रिया उसका साथ देगा, नहीं तो उदासीन रहेगा । दूसरी बात यह थी कि रूस जर्मनी के साथ मिलजाय । रूस से युद्ध में सीधी सहायता लेने की न बिस्मार्क की इच्छा थी और न उसे आवश्यकता थी । उससे तो वह केवल उदा-सीनता चाहता था ।

युद्ध फ्रैंच सेना के धावे के साथ शुरू हुआ । नैपोलियन अपने पूर्व पुरुषा की शक्ति न रखता हुआ भी उस का अनुकरण करना चाहता था ।

साथ ही यह भी जानता था कि उस का प्रथम विजय आस्ट्रिया की ओर से सहायता लाने का हेतु होगा। ६० हज़ार सिपाहियों को साथ लेकर नैपोलियन ने सारब्रकन नाम के नगर पर धावा किया। जर्मनी की सारी सेनायें सारब्रकन से उत्तर की ओर एकत्र की गई थीं। उस के दक्षिण का भाग छोड़ दिया गया था। जर्मनसेनापति की युद्धयुक्ति अधिक उचित थी। वह जानता था कि अधीर नैपोलियन जर्मनी की निर्बल सीमा पर पहला धावा करेगा और दक्षिणी रियासतों में अपनी सेनायें डाल देगा। जर्मनसेनायें उस निर्बल सीमा को छोड़ कर उससे उत्तर की ओर जमा की गई थी, ताकि यदि फ्रैंचसेना जर्मनी के अन्दर घुस जाय तो जर्मनसेना पार्श्व पर आक्रमण करके उसे दो हिस्सों में काट दे। ऐसा करदेने से जर्मनी के अन्दर घुसी हुई सेनाओं को बचकर लौटना कठिन होजाता।

इस युक्ति को देखते हुए भी न देखकर नैपोलियन स्वयं जाल में फंसा। ६० सहस्र सेना के साथ वह सारब्रकन पर जा पड़ा। खेत फ्रैंचसेना के हाथ रहा। जर्मनी की जो थोड़ी बहुत सेना थी, वह उस स्थान को छोड़ कर चली गई। नैपोलियन ने पेरिस को इस विजय का समाचार भेज दिया।

एक दिन की चांदनी का आनन्द लूटने के पीछे तीन अगस्त की शाम को नैपोलियन को सूचना मिली कि उत्तरदिशा से जर्मनसेनारूपी वज्र गिरा ही चाहता है। जर्मनसेना का अगला भाग फ्रैंचसेना के पास आ पहुंचा था और उस के पीछे तीन लाख सिपाहियों का जयकारा सुनाई देरहा था। इसके आगे जो कुछ हुआ वह फ्रांस के इतिहास का काला पृष्ठ है। सब कुछ गड़बड़ होगया। नैपोलियन की मति चक्कर खा गई। शीघ्र शीघ्र आज्ञायें बदलने लगीं। अभी एक सेनापति को आगे चलने की आज्ञा मिलती थी तो थोड़ी देर पीछे उसे लौटने का हुक्म होता था। एक सेनापति नहीं जानता था कि उसका साथी किस जगह लड़ रहा है। सेनाओं को यह पता नहीं था कि यदि यह जगह छोड़ना पड़े तो किधर जाना चाहिये। इधर यह दशा थी और उधर जर्मनी की सेना युवराज और राजकुमार फ्रैडरिक चार्लस आदि की अध्यक्षता में बराबर बढ़ने लगी, और नगर के पीछे नगर अपने अधिकार में करने लगी।

युद्ध की कथा वहुत लम्बी और पेचदार है। फ्रेंचसेना उसी वहादुरी से लड़ी, जिस से वह महान् नैपोलियन के समय लड़ती थी, किन्तु उसे विजय की सीढ़ी पर चढ़ाने वाला कोई नहीं था। सिंहों की सेना शृगालों द्वारा चलाई जा रही थी। फ्रेंच सेनापति भूल पर भूल करते थे और फिर भी नहीं थकते थे। वियोनविल ग्रेवलौट आदि के युद्धों में जर्मनी के विजय का कारण फ्रेंच सेनापतियों की भूलें ही थीं।

एक महीने तक इसी प्रकार युद्ध होता रहा। जर्मनी की सेनायें धीरे २ आगे बढ़ती रहीं। सितम्बर की पहली तारीख़ के प्रातः, दोनों सेनायें सेडां के सुरक्षित दुर्ग के सामने लड़ने के लिये तय्यार खड़ी थीं। नगर फ्रेंचसेना के अधिकार में था। सेनापतित्व के लिये स्वयम् सम्राट् नैपोलियन विद्यमान था, गिनती में रक्षा करने वाले आक्रमण करने वालों से कम थे। उन जर्मन सिपाहियों की संख्या जो सेडां के वीर रक्षकों को नगरच्युत करना चाहते थे, २४०००० थी और रक्षकों की संख्या १२०००० | संख्या में वहुत असमानता थी। जर्मनी के युद्धनीतिज्ञों का यही मत था और अव तक है, कि विजय पाने का सव से बड़ा उपाय यह है कि आवश्यक युद्धों में अधिक से अधिक सेना इकट्ठी की जा सके। जर्मनी की सेना को संख्या अधिक होने का लाभ था तो फ्रेंच सेना को दुर्ग में सुरक्षित होने का लाभ था। नीतिकार का यह कथन अत्युक्ति नहीं है कि क़िले में वैठा हुआ एक वीर खुले मैदान से आने वाले सौ आक्रमणकारियों से लड़ सकता है*। फ्रेंच सेनापति यदि बुद्धिमत्ता से लड़ते तो उन के लिये रक्षा और सम्भवतः जीत का भी बड़ा अच्छा अवसर था। किन्तु वहां तो दशा ही और थी। फ्रेंच सिपाहियों की वहादुरी आशा दिलाती थी, तो उन के सेनापतियों की अयोग्यता निराश कर देती थी। सिपाहियों को अपने नेताओं में विश्वास नहीं था। नेता पेरिस के युद्धविभाग की निन्दा करते थे और पेरिस का युद्धविभाग पराजय का लाञ्छन सेनापतियों के सिर थोपता था। सेना, सेनापति और युद्धविभाग सव मिल कर नाममात्र के सम्राट् नैपोलियन को गालियां देते थे।

---

* एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः। मनुः।

इस युद्ध में सम्राट् की विचित्र दशा थी। वह जानता था कि सेनापति बनने की योग्यता उस में नहीं है। इसलिये किसी सेना की अध्यक्षता उसे नहीं दी गई थी। किन्तु सेना के साथ न रह कर पेरिस में रहना भी उस के लिये सम्भव नहीं था। वह ज़बरदस्ती से सम्राट् बना था, अपने उच्चपद की रक्षा भी वह ज़बरदस्ती से ही कर सकता था। कोई बड़ा विजय प्राप्त किये विना पेरिस में उसका सिक्का जमना कठिन था। वह एक चमकदार विजय की प्राप्ति के लिये पेरिस से रवाना हुआ था, जब वह विजय से निराश हो गया तो उसकी एक मात्र इच्छा यह थी कि वह युद्ध में काम आवे और अपने रुधिर से नाम की अप्रियता को प्रजा के चित्तों से धोदे। इस लिये वह सेना के साथ खिंचा खिंचा फिरता था। पेरिस से चलता हुआ नैपोलियन सारा राज्यभार साम्राज्ञी पर डाल आया था। विजयों के मीठे समाचार न सुन कर वह भी खिझ गई थी, और सब से बड़ा उपहास यह था कि झट पट जीतने के लिये शाही फरमान भेज रही थी।

सेडां नगर की रक्षा सुलभ थी। उसमें घुसना कठिन था, किन्तु साथ ही उस में से निकलना और भी कठिन था। सेडां में घुसते हुए फ्रैंच सेनापतियों ने इस विषय पर विचार नहीं किया था कि घिर जाने की अवस्था में वे क्या करेंगे ? जर्मनी के सेनापतियों ने झट इस बात को ताड़ लिया। १ सितम्बर के प्रातःकाल जर्मनसेना ने सेडां को घेरना प्रारम्भ किया। दिन भर घोर युद्ध होता रहा। नगर के पास का एक २ गांव बड़ी वीरता से लड़ा और बहुत देर में जीता गया। फ्रांस के सिपाही पूरी शक्ति से लड़ते रहे। सम्राट् नैपोलियन ने और एम. महोन और ड्यूक्रौट आदि सेनापतियों ने अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ी। दौर्भाग्यवश युद्ध चलने के थोड़ी देर पीछे ही सेनापति एम. महोन घायल होगया। सेना चलाने का भार सेनापति ड्यूक्रौट पर पड़ा। ड्यूक्रौट की आंखें अब तक खुल चुकी थीं। वह देख रहा था कि जर्मनी की सेनायें बराबर सेडां को घेरती जा रही हैं। रक्षा का एक मात्र उपाय नगर को छोड़ कर निकल जाना था। घिर जाने पर फिर एक सिपाही का जीते निकलना भी असम्भव सा था। ड्यूक्रौट ने सेडां छोड़ कर जाने का निश्चय किया। उसी समय उसे ज्ञात हुआ कि जिस रास्ते से वह नगर को छोड़ कर लौटना चाहता

है, वह भी जर्मन सेनाओं से भर रहा है, किन्तु चूहे की भांति पिंजरे में पकड़े जाने से रास्ता निकालने का यत्न करना अधिक उचित समझ कर उसने आज्ञा दे दी कि सेडां ख़ाली कर दिया जाय।

सेनायें अपने स्थानों को छोड़ने लगीं। बाज़ार ख़ाली होने लगे। सिपाही सेडां से निकलने की तय्यारी करने लगे—उसी समय फ़्रेंचसेना के भाग्यों का निश्चायक चमत्कार हुआ। पेरिस के युद्धविभाग का भेजा हुआ सेनापति विम्फन आ पहुंचा और आते ही उसने पहली आज्ञा को रद्द कर दिया। उतारी हुई तोपें फिर चढ़ाई गईं, घेरे हुए स्थानों पर सेना जमाई गई—और जहां तक हो सका खोई हुई भूमिको पाने की चेष्टा होने लगी। इस गड़बड़ से सेना का रहा सहा विश्वास भी जाता रहा। सेना—और विशेषतया समझदार फ़्रेंचसेना—और सब कुछ सहन कर सकती है, किन्तु सेनापतियों की अस्थिर मति को सहन नहीं कर सकती।

शायद बचाव का एक वही उपाय सम्भव था जिसे डच्यूक्रौट अवलम्बित करना चाहता था—शायद इस लिये क्योंकि यह भी सम्भव था कि सेडां को छोड़ती हुई फ़्रेंचसेना रास्ते में घिर जाती, और बिच्छू के मुंह में से निकलकर सांप के मुंह में जा पड़ती। अब तो घण्टों की ही बात थी। प्रशियन घुड़सवार दायें हाथ से घेरा डालते डालते बायें हाथ की जर्मनसेना से जा मिले। सेडां का नगर पूरी तरह घेर लिया गया और जर्मनी की पांच सौ जंगी तोपों ने नगर में आग बरसानी शुरू की। विम्फन ने पागलों की भांति कई बार यत्न किया कि जर्मनसेना की लोहमय दीवार को टक्कर मार कर तोड़दे, परन्तु निराश हुआ। नैपोलियन ने कई वार चाहा कि वह तोप के गोले की मार में आ-जाय किन्तु दैव ने उसे ऐसी आदरणीय मृत्यु देने से साफ़ इन्कार करदिया।

नगर में गोले धांय धांय बरसने लगे। चौमंज़ले मकान गिर २ कर हत्या-काण्ड मचाने लगे। नगरवासी बेचारे तहाख़नों में घुसने के उपाय सोचने लगे। इस दृश्य ने नैपोलियन के उदास और खिन्नचित्त को और भी चञ्चल करदिया। थोड़ी ही देर में जर्मन सेना की भयानक हर्षध्वनि से घिरे हुए सेडां नगर के सब से ऊंचे स्थान पर 'पराजितोऽस्मि' का सफ़ेद झण्डा चढ़ा दिया गया।

फ्रांस के सम्राट् ने लगभग एक लाख सिपाहियों और कई सेनापतियों के साथ अपना पराजय स्वीकार किया। नैपोलियन ने उसी समय अपने एक दूत के हाथ प्रशिया के राजा के पास एक पत्र भेजा जिसमें लिखा कि—

"सेनाओं के साथ मृत्यु न पाकर मैं अपनी"
"तलवार श्रीमान् के चरणों में रखता हूं।"

तलवार का चरणों में रखना स्वीकार कर लिया गया। नैपोलियन स्वयं चार सवारों के साथ शहर से बाहर निकल कर बिस्मार्क को ढूंढने गया। प्रातःकाल का समय था। बिस्मार्क अभी वेष भी नहीं बदलने पाया था। नैपोलियन के आने का समाचार सुनकर वह झटपट घोड़े पर सवार होकर नैपोलियन के पास पहुंचा। दोनों पुराने प्रेमी एक छोटे से झोंपडे में मिले और बात चीत करते थे। वह भी विचित्र दृश्य था। एक ओर बिस्मार्क था, जो विजय से चमक रहा था; और दूसरी ओर बुढ़ापे से पूर्व हीं बूढ़ा उदास अभागा नैपोलियन बैठा था। वह अपने और सेना के लिये पराजय की शर्तों को हलकी कराने की चेष्टा कर रहा था। उस समय जर्मनी अभिमान से कह सकता था कि "इस झोंपड़ी में जर्मनी का एक ऐसा पुत्र बैठा है, जिसने फ्रांस से जेना के युद्ध का पूरा बदला ले लिया है, और अभिमानी नैपोलियन के वंश को उसी स्थिति में कर दिया है, जिस में तीसरा फ्रेडरिक उस समय था।"

सम्राट् नैपोलियन अपनी सारी सेना के साथ हथियार रखकर युद्ध का कैदी समझा गया। सारे फ्रेंच झण्डे शत्रु के हाथ आये और जर्मन सेना के जय जय कार से दसों दिशाओं का मण्डल गूंजने लगा।



नैपोलियन और बिस्मार्क

चौथा परिच्छेद

पेरिस का पतन

विस्मार्क सेनापति नहीं था, किन्तु वह सेना के साथ रहता था। सेना उसकी अपनी कृति थी। युद्ध में वह सदा अपने राजा के साथ रहता था। लड़ाई में भाग न लेता हुआ भी वह सिपाही का वेष पहिनने में अपना गौरव समझता था। साथ २ उसका कार्यालय भी चलता था। नैपोलियन की भांति वह संग्राम भूमि से ही जर्मनी का शासन किया करता था। कहीं कोठे कहीं तम्बू और कहीं झोंपड़ी में प्रतिदिन चार पांच घण्टे राज्यकार्य करने के साथ ही साथ वह युद्ध के घायलों की देख भाल करता रहता था।

युद्ध में विस्मार्क का इतना ही भाग नहीं था। जर्मनी के विजय के लिये उसने अपनी सर्वप्रिय वस्तु दे छोड़ी थी। उसके दोनों पुत्र सेना में साधारण सिपाहियों के रूप में लड़ रहे थे। इस समय जर्मनी अपने प्यारे से प्यारे अंग को हथियार बनाकर लड़ रहा था। राजा विलियम के दोनों पुत्र सेना में सेनापति थे, प्रिंस विस्मार्क के तनुज साधारण सिपाहियों में लड़ रहे थे। युद्धसचिव रून का पुत्र इसी युद्ध में मारा गया था। क्या इन बलिदानों को देखता हुआ जर्मनी का एक भी निवासी उस समय कह सकता था कि 'मैं देश के लिए बलिदान नहीं दूंगा' जर्मनी को १८७० में विजय प्राप्त हुआ, क्योंकि उसके पुत्रों ने निश्शंक होकर अपने और अपनी सन्तान के रुधिर से मातृभूमि का तर्पण किया। क्या रुधिर द्वारा तर्पण पाये विना मातृभूमि कहीं सन्तुष्ट हुई है? कभी नहीं।

सेडां के पीछे जर्मन सैन्यसागर आगे ही आगे बढ़ाता गया। फ्रांसने उस समय अपना स्वाभाविक गौरव दिखाया। फ्रैंचजाति ने उस भयंकर पराजयके पीछे दिखलाया कि उसकी रगों में किन का रुधिर सञ्चार कर रहा है। सम्राट् कैदी हुआ, सेना के बड़े भागने हथियार रख दिये और उधर सेनासहित एक सेनापति मेज़ नगर में बन्द कर दिया गया। ऐसे समय और कोई देश होता तो चारों शाने चित हो जाता। किन्तु वीरों की सन्तान फ्रैंच जाति में से किसी

एक भी कण्ठ ने 'हम हार गये' नहीं कहा। लड़ो, लड़ाई के लिये तय्यार हो, यही नाद था जो चारों ओर गर्जने लगा। पेरिस में शत्रु का सामना करने की तय्यारियां होने लगीं। पेरिस से बाहिर भी अनेक स्थानों पर स्वतन्त्ररूप से सेनायें तय्यार होने लगीं। सारा देश आक्रमणकारी के दांत खट्टे करने के लिये तय्यारी करने लगा। इतिहास फ्रूंच जाति के इस असाधारण देशप्रेम को कभी नहीं भुला सकता। नैपोलियन ने प्रशिया और आस्ट्रिया को कई वार जीता था। एक युद्ध के पीछे ही सारा देश विजेता के चरणों में आपड़ा था। किंतु फ्रूंच जाति ने सेडां के पराजय को एक साधारण उत्तेजक घटना समझा और विना किसी राजा की सहायता के भी महीनों तक जर्मन सेनाओं का सामना किया।

जर्मनी की सेना पेरिस के आस पास पहुंचने लगी। सितम्बर मास प्राप्त होने से पूर्व ही सारा पेरिस शत्रु से घिर गया। चार महीने तक पेरिस इसी प्रकार घिरा रहा। जर्मनी का राजा नहीं चाहता था कि पेरिस जैसे सुन्दर नगर को गोलों से उड़ाया जाय। उधर पेरिसवासी नहीं चाहते थे कि वे ऐसी शर्तों पर जर्मनी से सन्धि करें जिन से फ्रांस का अपमान हो। नैपोलियन के पकड़े जाने पर पेरिसवासियों ने प्रजातन्त्र शासन की उद्घोषना करदी थी और प्रसिद्ध लेखक थियेर को मुखिया बनाकर गवर्मेण्ट भी स्थापित कर दी थी। इस नई गवर्मेण्ट के प्रतिनिधि फेव्रे ने बिस्मार्क से मिलकर सन्धि की शर्तें पूछीं। जर्मनी की शर्तें बहुत कठोर थीं। बिस्मार्क फ्रांस से अल्सेस और लोरेन इन दो प्रान्तों के अतिरिक्त बलफ़ोर्ट मेज़ और स्टारबर्ग नाम के नगरों को भी लेना चाहता था। बेचारे जूलसफेव्रे ने इन शर्तों को कोमल करने की भरसक कोशिश की। थियेर स्वयं बिस्मार्क से मिला। यह असाधारण पुरुष भी अपनी सारी शक्ति लगा कर केवल एक बलफ़ोर्ट बचा पाया। बिस्मार्क अपनी शर्तों पर पक्का रहा। उसकी युक्ति कई अंशों में ठीक थी। एल्सस प्रान्त और लोरेन वस्तुतः जर्मनी के ही थे जो फ्रांसने जीत लिये थे, उनका मांगना जर्मनी के लिये स्वाभाविक था। स्टारबर्ग जर्मनी की चाबी है। स्टारबर्ग को हाथ में रखता हुआ फ्रांस हर समय जर्मनी पर आक्रमण की धमकी दे सकता है। मेज़ को बिस्मार्क इसलिए चाहता था कि जर्मनी फ्रांस को हर समय धमका सके, क्योंकि मेज़ फ्रांस की चाबी कही जासकती है।

इधर पेरिस के गवर्मेण्ट सन्धि की बातें कर रही थी और उधर फ्रांस की प्रजा आक्रमणकारी को देश से निकालने का यत्न कररही थी। देश में आवेश तो फैला ही हुआ था, केवल एक ऐसे मुखिया की आवश्यकता थी, जो बुद्धिमान् और प्रभावशाली हो। गैम्बटा नाम का एक प्रसिद्ध वकील पेरिस में रहता था, और शत्रुको रोकने के लिये प्रजा को खूब भड़काया करता था। जब पेरिस घिर गया तो एक वैलून पर बैठ कर वह बाहिर निकल गया। उसकी वक्तृत्व शक्ति और चतुराई ने कई महीनों तक जर्मनी की सारी विजयिनी सेना को हैरान रखा। उसने शस्त्र ग्रहण करने की आवाज़ उठाई तो लग भग दोलाख नई सेना तय्यार होगई। इस सेना से उसने पेरिस के घेरे को तोड़ने का यत्न किया। जर्मनी की पुरानी और शिक्षित सेना के सामने इस नई और अर्द्धशिक्षित देशभक्त सेना का कृतकार्य होना केवल एक दुराशामात्र थी, देश भक्ति भी शस्त्रप्रयोग का अभ्यास नहीं सिखा सकती तथापि इस में कौन सन्देह करसकता है कि इन यत्नों से फ्रांस की प्रजा ने देशप्रेम के लिये वह उज्ज्वल यश कमा लिया है जो और किसी देश ने नहीं पाया है। स्वतन्त्रता के अग्रदूत इटली के केसरी जेरी वाल्डी ने भी स्वतन्त्रताके नाम पर गम्बटा का हाथ बटाने की कोशिश की, किन्तु अन्त को जर्मनी की शिक्षित सेना की ही जीत रही पेरिस का घेरा निष्कण्टक हो गया।

जर्मनी का राजा और पेरिस की गवर्मेण्ट के कर्णधार दोनों ही नहीं चाहते थे कि पेरिस पर गोले बरसाये जायं। यह बहुत भयानक कार्य था। पेरिस उस समय संसार के सब से पुराने और सब से सुन्दर नगरों में अग्रगण्य समझा जाता था। उसके अद्भुत महल बांके बाज़ार और मनोहारी उद्यान तोपों के गोलों के योग्य नहीं थे। विलियम नहीं चाहता था कि वह मनुष्य की इस सौन्दर्यशिल्पशाला का ध्वंस करे। पेरिस की गवर्मेण्ट के अधिकारी तो पेरिस पर गोले बरसने की अपेक्षा और कुछ भी अच्छा समझते थे। पेरिस पर गोले बरसें या न बरसें पेरिस का पतन अब अवश्यम्भावी था। बाहिर से पेरिस के घेरे का टूट जाना ही एक रक्षा का उपाय था। अभी तक उसकी कुछ आशा थी। उधर से निराश होते ही पेरिस की गवर्मेण्ट की ओर से उसका मुखिया थयेर बिस्मार्क के पास हीन सन्धि की बातचीत करने आया।

वह बात चीत बड़ी करुणाजनक थी। एक ओर विजय के मद से मत्त और लम्बाई चौड़ाई में पूरा भीमसेन बिस्मार्क बैठा था, और दूसरी ओर सरस्वती की सेवासे कृशकाय और पराजय की लज्जा से झुका हुआ थयेर था। बिस्मार्क का कथन इस समय आज्ञा के समान था। थयेर बेचारा सच्चा देशप्रेमी था। बिस्मार्क के मुंह से फ्रांस के लिये लज्जाजनक शर्तें सुनकर वह कभी उत्तेजित होता था, कभी प्रतिपक्षी के चित्त में करुणा के भाव को पैदा करना चाहता था और कभी धमकी देता था। किन्तु बिस्मार्क अपनी शर्तों पर पक्का रहा। जो थोड़ी बहुत रियायतें कीं, वे भी केवल कथनमात्र को थीं। जो शर्तें यहां तय हुईं और फिर पीछे से स्वीकृत हुईं उन में से मुख्य २ निम्नलिखित हैं—

(१) मेज़ और डीडनहोफ़न नाम के नगरों के सहित लोरेन का उत्तर पूर्वभाग, और बैल्फ़ोर्ट को छोड़ कर एल्सस जर्मनी को प्राप्त हो।

(२) फ्रांस १८७१ में १ एक अर्ब फ्रैंक दे, और अगले तीन वर्षों में चार अर्ब फ्रैंक और दे।

(३) सन्धि के तय होजाते ही जर्मनी की सेनायें फ्रांस को छोड़ने लग जांय। पेरिस और सेन नदी के बांये ओर के क़िले एक दम छोड़ दिये जांय।

(४) जब तक फ्रांस दो अर्ब रुपया न दे दे, फ्रांस के बहुत से सुरक्षित स्थान जर्मनी के हाथ में रहें। जब तक वे फ्रांस की भूमि पर रहें, उन के भोजनादि का व्यय फ्रांस की गवर्मेण्ट को ही देना होगा।

ये शर्तें फ्रांस की शासक सभा ने बोर्डियो में १ मार्च १९७१ को स्वीकार कीं। उसी दिन जर्मनी के राजा ने अपनी सेना के साथ पेरिस में प्रवेश किया। दो दिनों तक पेरिस जर्मनी की सेनाओं के पास रहा, और ३ मार्च को वह ख़ाली कर दिया गया।

जर्मनी की कामनायें पूर्ण हुईं। जेना का भयंकर बदला ले लिया गया। फ्रांस की गर्दन लज्जा से झुक गई, और जर्मनी का सितारा बुलन्द हो गया। युद्धशान्ति की शर्तों ने फ्रांस के देशभक्तों के चित्त को जो क्लेश पहुंचाया, उसकी कल्पना केवल उन जातियों के लोग ही कर सकते हैं, जिनके अन्दर सच्ची देशभक्ति विद्यमान है। भारतवासी उसकी कल्पना क्या करेंगे ? इस

युद्ध ने फ्रांस के अंग काट लिये, और उनके साथ मान मर्यादा को भी धूल में मिला दिया।

क्या जर्मनी की सरकार का ऐसी कठोर शर्तें करना उचित था? क्या कुछ नर्म शर्तों से उसका काम न चल जाता? यह एक प्रश्न है, जिस के दोनों पक्षों में बहुत कुछ कहा और लिखा गया है। जर्मनी की ओर से कहा जाता है कि यदि फ्रांस से नर्म शर्तें की जातीं, तो आगे को सदा जर्मनी को आक्रमण का भय रहता। एक बार फ्रांस को डरा देना और देर तक लड़ने के लिये अशक्त कर देना ही उस की कठोरता का प्रयोजन था। दूसरी ओर से कहा जाता है कि सम्भवतः नर्म शर्तें विद्वेष के बीज को ही नष्ट कर देतीं। विजय के समय में उदारता अपना प्रभाव उत्पन्न किये विना नहीं रहती है। फ्रांस के साथ जो व्यवहार हुआ, वह अभिमानिनी फ्रैंच जाति को भूल नहीं सकता था—और समय ने बतलाया है कि नहीं भूला। जर्मनी की कठोरता ने फ्रांसनिवासियों के दिलों में एक कांटा छोड़ दिया था, जिस का उद्धार बर्लिन में विजयिनी फ्रैंच सेनाओं के प्रवेश के विना नहीं होसकता। फ्रांस की समझदार प्रजा का ऐसा ही विचार है। क्या फ्रांस की प्रजा का विचार स्वाभाविक नहीं? बिस्मार्क का यह कहना भी किसी दर्जे तक ठीक था कि जर्मनी ने जो कुछ किया, वह उस का शतांश भी नहीं है, जो नैपोलियन ने प्रशिया के तथा अन्य देशों के साथ किया था, किन्तु क्या नैपोलियन के विजय वाटर्लू और सेडां के पराजयों के कारण नहीं हुए? क्या उन्हीं ने बिस्मार्क से १८७१ की शर्तें पेश नहीं करवाई? फिर क्या बिस्मार्क का नैपोलियन के कदमों पर चल कर जर्मनी के लिये एक और वाटर्लू, एक और सेडां और एक और १८७१ की सन्धि के दृश्य दिखलाना आवश्यक था? यह तो समय दिखायगा कि ये दृश्य किस देश को देखने पड़ेंगे, किन्तु इतना कहे विना कोई भी इतिहास का अनुशीलक नहीं रह सकता कि यदि बिस्मार्क विजय में उदारता दिखाता और फ्रांस के साथ नर्म व्यवहार करता तो वह विद्वेषाग्नि, जो दो जातियों के दिलों में आज भड़क रही है इतनी प्रचण्ड न होती। पराजय के अपमान को प्रेम की कोमलता धो देती और सम्भव था कि दो पड़ोसी आपस में तोपें तानने की जगह प्रेम व्यवहार में समय विताते।

पाँचवाँ परिच्छेद।

साम्राज्य की स्थापना।

अन्तिम पड़ाव आ पहुंचा। राष्ट्र निर्माण की पूर्ति का समय उपस्थित हुआ। जर्मनी ने फ्रांस के दबाव से स्वाधीनता प्राप्त कर ली-अब राष्ट्र के सर्वांग सम्पूर्ण होने में केवल एक वस्तु की न्यूनता रह गई—वह वस्तु एकता थी। जर्मनी की उत्तरीय रियासतें एक हो चुकी थीं, दक्षिणी रियासतें भी उनके मेल में व्यापार सन्धि द्वारा मिल चुकी थीं, फ्रांस के साथ युद्ध करने के लिये समग्र जर्मनी के पुत्र एक ही झण्डे के नीचे चले थे—यह सब कुछ हो चुका था, किन्तु अभी दक्षिण की रियासतों ने एक ही राज्यच्छत्र के तले आना पूरी तरह स्वीकार नहीं किया था। सारे जर्मनी का शासन एक ही केन्द्र से नहीं होने लगा था। जो एक मात्र न्यूनता शेष थी, उस की निवृत्ति का समय आ गया।

सेडां के युद्ध ने दक्षिणी रियासतों के दोलायमान विचार को एक ठिकाने कर दिया। फ्रांस के पराजय ने उन्हें प्रशिया की ओर धकेल दिया। वेडन रियासत ने नये साल के प्रारम्भ में भी जर्मन कान्फडरेशन में मिलना चाहा था। वुर्टम्बर्ग और बवेरिया का आना कुछ कठिन सी बात थी। उस में कई कठिनाइयां थीं। ये दोनों रियासतें अपनी स्वाधीनता को सर्वथा नहीं खोना चाहती थीं। विशेषतया बवेरिया को अपनी स्वाधीन सत्ता की बहुत चिन्ता थी। बिस्मार्क इस बात को खूब समझता था। वह जानता था कि जो देश या रियासत स्वाधीनसत्ता की इच्छा रखती हो, उसे बलात्कार से पराधीन करना कभी सुखान्त नहीं होता। उसके सामने दो रास्ते खुले थे। वह बवेरिया जैसी अनिच्छुक या अर्धेच्छुक रियासतों को ज़बरदस्ती प्रशिया के अधीन कर लेता, अथवा बवेरिया को जर्मन साम्राज्य में मिला कर भी इतनी स्वाधीनता के साथ छोड़ देता कि उसे पराधीनता का अनुभव ही न होता। बड़ी प्रबल शक्तियां उसे पहले मार्ग के अवलम्बन की ओर प्रेरित कर रही थीं। विशेषतया युवराज का कथन था कि प्रशिया को अब दृढ़तापूर्वक आज्ञा द्वारा

सारे जर्मनी देश को एक कर देना चाहिये। उसने आगा पीछा करने पर बिस्मार्क को कहा था कि 'तुम अपनी शक्ति से पूरी तरह अभिज्ञ नहीं हो।' किन्तु बिस्मार्क का उत्तर स्पष्ट था। वह कहता था कि 'हम असन्तुष्ट बवेरिया को नहीं चाहते, हम ऐसे बवेरिया के अभिलाषी हैं, जो अपनी स्वतन्त्र इच्छा से हमारे साथ मिले।' इस के लिये बिस्मार्क ने बवेरिया को साम्राज्य के अन्दर लाते हुए भी उसे बहुत सी स्वाधीनता देदी। शान्ति के समय में बवेरिया का राजा अपनी सेना का सेनापति रह सकेगा, उस की सेना प्रशियन ढंग पर नहीं ढाली जायगी, अन्य देशों से व्यवहार करने में उसे कुछ स्वतन्त्रता रहेगी—इत्यादि कई रियायतें पाकर बवेरिया ख़ुशी ख़ुशी जर्मनमेल में आ मिला। बवेरिया के साथ सन्धि पूरी करके बिस्मार्क ने अपने कार्यालय में जाकर कहा कि 'कार्य होगया, एकता पूरी होगई और उसके साथ ही कैसर (सम्राट्) और रीश भी बनगये।'

इस विचित्र मेल के लिये लोग उस समय बिस्मार्क पर बहुत दोष देते थे। राजनीति के उपाध्याय, पत्रों के सम्पादक और पेशावर वक्ता इस नये संगठन को देख कर आश्चर्य करते थे और कहते थे कि बिस्मार्क की यह नई रचना राजनीति के सब सिद्धान्तों से विपरीत है। क्या यह भी कोई मेल है? यदि यह साम्राज्य है तो फिर गोल पत्थरों के ढेर का नाम पहाड़ी क्यों नहीं है? उन लोगों की भविष्यवाणी थी कि ऐसा अनूठा मेल बहुत दिन तक नहीं रह सक्ता। जर्मन साम्राज्य का कोई अवयव स्वतन्त्र है कोई परतन्त्र। किसी को दस अधिकार हैं, कोई पांच अधिकार शेष रख कर ही सन्तुष्ट है तो कोई सर्वथा तन्मय होगया है। बिस्मार्क ने यह मेल करके स्वयम् ही कहा था कि—

"पत्रसम्पादक सन्तुष्ट नहीं होंगे, इतिहासलेखक सम्भवतः हमारे मेल को सिद्धान्त-विरुद्ध कहेंगे। शायद वे कहेंगे कि 'मूर्ख आदमी (रियासतों से) अधिक मांग सकता था, उसे अवश्य मिल जाता, उन्हें देना ही पड़ता, उस का बल ही उसका अधिकार था किन्तु मेरी इच्छा थी कि ये लोग यहां से सन्तुष्ट जांय। उन सन्धियों का लाभ क्या है जिन पर लोगों से बलात्कार द्वारा हस्ताक्षर कराये जांय। मैं उन की निर्बल दशा का लाभ नहीं उठाना चाहता। मेल के दोष हैं, किन्तु उन दोषों के कारण ही वह अधिक प्रबल है।"

बिस्मार्क का कथन ठीक था। समय ने यह सिद्ध कर दिया है। उस विचित्र मेल ने ४४ वर्ष बिता दिये हैं, बड़ी २ आपत्तियों में भी वह स्थिर रहा है। जर्मनसाम्राज्य आज भी एक है और बिस्मार्क की अद्भुत बुद्धि का परिचय दे रहा है। ये ही बातें सिद्ध करती हैं, कि इस संसार की असली पहेलियों को बूझने के लिये पुस्तकविद्या से अधिक प्रबल साधन की आवश्यकता होती है। पुस्तकों में संसार के नियमों का अन्त नहीं, केवल प्रारम्भ है।

जर्मनी एक होगया, अब प्रशिया के राजा को सम्राट् पदवी से विभूषित करना शेष रह गया। विलियम अपने सिद्धान्तों का पक्का था। उस की सम्मति थी कि वह प्रजा के कहने से सम्राट् पदवी को धारण न करेगा, जब जर्मनी की रियासतों के शासक एकस्वर होकर प्रस्ताव करेंगे, तब उसे इन्कार न होगा। अब यह कार्य कठिन नहीं रहा। सब छोटी छोटी रियासतों ने मिलकर बवेरिया को प्रेरित किया कि वही विलियम के पास ऐसा प्रस्ताव भेजे। बिस्मार्क ने वह चिट्ठी भी बना कर भेज दी जो बवेरिया की ओर से भेजी जानी चाहिये थी। उस चिट्ठी में बवेरिया के राजा ने प्रथम विलियम से जर्मनी के सब शासकों की ओर से प्रार्थना की थी कि वह जर्मन सम्राट् की पदवी को धारण करे। विलियम ने वह प्रार्थना स्वीकार करली।

अभी पेरिस का घेरा पड़ा हुआ था। विलियम का डेरा नगर से कुछ दूर ही जमा हुआ था। फ्रांसी राजाओं के प्रसिद्ध महल वरसाय्या (Vesrailles) में, १८ जनवरी १८७१ के दिन महोत्सव रचा गया। उस उत्सव में प्रशियन राजा के सेवक बिस्मार्क ने साम्राज्य का राजमुकुट विलियम को भेंट किया। उस दिन से पहला विलियम जर्मन सम्राट् वा कैसर कहाने लगा। बिस्मार्क का जन्म सुफल हुआ। उसके अनवरत परिश्रमों का फल संसार के सम्मुख उज्ज्वल रूप में प्रकाशित होने लगा। कृतज्ञता और प्रेम से भरी हुई जर्मनजनता ने अपने देश के परमसुपूत बिस्मार्क का साधुवाद के कलकल-रव से अभिनन्दन किया, और पहले विलियम ने इन अपूर्व सेवाओं के बदले में बिस्मार्क को कौण्ट की



साम्राज्य की उद्घोषणा

उपाधि से विभूषित किया। सब लोग मिल कर ख़ुशी हुए। प्रथम विलियम सम्राट् पद को पाकर, बिस्मार्क अपने कार्य को पूरा करके और जर्मन प्रजा स्वाधीनता और एकता के उन अमूल्य अमृतों को पीकर, जो उन्हीं लोगों को प्राप्त होते हैं, जिन के अन्दर प्राण हैं, जिन में स्वार्थत्याग है और जो मातृ-भूमि की वेदी पर अपने मांस और लहू को बलिदान करने के लिये तय्यार होते हैं।

हे स्वाधीनते! तू लहू की प्यासी है। हे एकते! तू व्यक्ति की सत्ता को बुझा देती है। जर्मनी के सुपूतों ने लहू की नदियों से यज्ञ रचा और समग्र राष्ट्र की सत्ता में अपनी सत्ता को मिटा दिया—देवियो! इसीलिये तुमने उन पर कृपा की। तुम धन्य हो और जर्मनी के वे सुपूत भी धन्य थे। तुम्हें हमारा वारंवार नमस्कार पहुंचे।



सप्तम भाग

जीवन नाटक का अन्त



पहला परिच्छेद।

लगभग बीस वर्ष।

जर्मन-राष्ट्र का कार्य पूरा होगया, और साथ ही इस पुस्तक का विषय भी समाप्त प्राय होगया। जर्मनराष्ट्रनिर्माण में बिस्मार्क का जो भाग था, उसका वर्णन करना इस पुस्तक का उद्देश्य था, वह लगभग पूरा होगया। नौ वर्ष पूर्व जर्मनी भग्नप्राय होचुका था, उस के अंग प्रत्यंग में विद्रोह मचा हुआ था, प्रजा को राजाओं में विश्वास नहीं था, और राजाओं को प्रजा का भरोसा नहीं था। प्रशिया, जो जर्मनी की प्रधान रियासत थी, फटने के लिये उद्यत ज्वालामुखी की भांती था। आपस के वादविवादों ने राष्ट्र की सारी स्थिरता नष्ट कर दी थी। राजा विलियम अपने आप से बेज़ार था। वह प्रशिया और उस द्वारा जर्मनी को आस्ट्रिया के पंजे से छुड़ाने के लिये सेना चाहता था, प्रजा इन्कार कर रही थी। विलियम के सामने राजपद से त्यागपत्र पड़ा था। यह अवस्था थी जब जर्मनी के राजनीतिक्षेत्र में एक नये सितारे ने अपना तेज फैलाया। बिस्मार्क योरप के रणक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ और उसने अपनी इच्छाशक्ति बुद्धिमत्ता और कार्य-कुशलता के बल से जहां अभाव था वहां भाव करदिया, जहां अंधेरा था वहां रोशनी फैला दी। जहां पराधीनता की रात्रि थी वहां स्वाधीनता का प्रभात चमक पड़ा, जहां अनेकता की विषवल्ली फैल रही थी, वहां एकता का अमृत बरसने लगा। जो विलियम त्यागपत्र लिख कर बैठा हुआ था, आज राजा से सम्राट् बनगया।

बिस्मार्क इन नौ वर्षों में इतना बड़ा कार्य कर चुका था, जितना एक व्यक्ति को प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा की उच्चतम सीढ़ी पर पहुंचाने के लिये पर्याप्त होता है। वह जर्मन साम्राज्य का पिता समझा जाता था। योरप के राजनीतिज्ञ उसे अपना मुखिया मानने में संकोच नहीं करते थे। लोगों का विचार था कि अब वह कार्यक्षेत्र से जुदा हो जायगा। वे कहते थे कि अब बिस्मार्क और जो कुछ करेगा, उससे उस की प्रतिष्ठा घटेगी ही बढ़ेगी नहीं। किन्तु लोगों को झूठे

भविष्यवादी बनना पड़ा। इन छोटे विचारों का अणुमात्र भी ख़्याल न करते हुए कैसर विलियम के कहने से बिस्मार्क नये जर्मन साम्राज्य का प्रधान सचिव होगया। संसार के महापुरुषों में भरा हुआ शक्तिपुंज होता है, जो उपयोग के साथ अधिकाधिक तीव्र होता जाता है, घटता नहीं है। जैसे कसरत से शरीर के पुट्ठे दृढ़ हो जाते हैं और उनकी कार्यक्षमता बढ़ती जाती है, इसी प्रकार असाधारण प्रतिभा भी प्रयोग में आकर अधिकाधिक दीप्ति लाभ करती जाती है। जिस समय साधारण लोग उस प्रतिभा का असामान्य विजय देखकर समझने लगते हैं कि अब यह प्रतिभा अपना कार्य कर चुकी, आगे इस का सुरक्षित रहना ही आवश्यक है, उस समय वस्तुतः वह और कार्य सम्पन्न करने के लिये, नये क्षेत्रों में चमक दिखाने के लिये, नये आकाश में जोत छिटकाने के लिये तय्यारी कर रही होती है। लोग समझते थे, नैपोलियन का पेट आस्टिर्लिज़ के युद्ध से भर जायगा फिर उन्होंने कल्पना की कि उस की प्रचण्ड प्रतिभा वाग्राम पर शान्ति करेगी, किन्तु नहीं, प्रतिभा दिन दिन तीखी होती गई और आख़िर अपने आधार की हत्या करके ही शान्त हुई।

जर्मन साम्राज्य की स्थापना के पीछे लगभग बीस वर्ष तक बिस्मार्क अपनी लगाई हुई फुलवारी की रक्षा करता रहा। जर्मनी का शब्द उन बीस वर्षों तक सारे योरप के लिये दैवी गूंज की भांति रहा। हर देश का राजनीतिज्ञ कान लगा कर सुनता रहता था कि जर्मनी के राजकीय विभाग से क्या शब्द निकलता है? बिस्मार्क ने उन बीस वर्षों में जो नीति रखी, वह 'शान्ति द्वारा उन्नति और उन्नति द्वारा शान्ति' की नीति कहा सकती है। वह जानता था कि जर्मन साम्राज्य अब अपनी स्वाभाविक सीमाओं तक पहुंच चुका है। इस के आगे बढ़ाने का यत्न करना किये हुए काम को भी नष्ट करदेगा। १८७७ में रूम के झगड़े में रूस और इंग्लैंड ने हथियार निकाल लिये थे, उस समय सब देशों ने मिलकर उस का मनमुटाव दूर करना चाहा था। बिस्मार्क का उस में विशेष यत्न था। झगड़े का फ़ैसला करने के लिये योरप के राजप्रतिनिधियों की एक सभा बर्लिन में बुलाई गई, जिस में बिस्मार्क को प्रधान की पदवी देकर योरप ने प्रतिभा के सामने सिर झुकाया। उस सभा में भाषण करते हुए बिस्मार्क ने अपनी नीति इन शब्दों में कही थी।

"हम नैपोलियन के मार्ग पर नहीं चलना चाहते। हम योरप के भाग्य निश्चायक या अध्यापक नहीं बनना चाहते। हम सेना का डर दिखला कर अन्य देशों के गलों में अपनी नीति नहीं ठोंसना चाहते।"

बिस्मार्क राजनीतिज्ञ था। वह जानता था कि जर्मन साम्राज्य की स्थापना के लिये जितने युद्ध की आवश्यकता थी, वह होचुका, अब साम्राज्य को दृढ़ करने की आवश्यकता है। दृढ़ता तभी सम्भव थी, यदि शान्ति स्थिर रहसके।

किन्तु शान्ति कैसे रहे? शान्ति की आशा कम थी। जर्मन साम्राज्य के एक ओर मानी फ्रांस था, जो शताब्दियों से दूसरों पर अत्याचार करना जानता था, दूसरे देशों की राजधानियों को उजाड़ सकता था, किन्तु उसे यहज्ञात नहीं था, कि उजड़ना किसे कहते हैं? १९ वीं शताब्दि ने उसे यह नया परीक्षण भी दिखा दिया। पहिले नैपोलियन के समय फ्रांस का पहिला पराजय हुआ था, उस समय फ्रांसी लोगों को कम से कम यह सन्तोष तो था कि वे सारे योरप की सम्मिलित शक्ति से पराजित हुए हैं। सारे संसार के विरुद्ध लड़ने का ध्यान—चाहे लड़ाई में हार ही हो—आत्माभिमान पैदा करने वाला होता है। १८७१ में वह भी नहीं था। अकेले जर्मनी ने उस का मानमर्दन करदिया। क्या मानिनी फ्रेंच जाति इस पराजय को कभी क्षमा कर सकती थी? बिस्मार्क अन्धा नहीं था कि वह फ्रांस से आने वाले भय को याद न रखता। उसे निश्चय था कि फ्रांस-जर्मनी की सीमाओं पर फिर एक वार रणचण्डी का नृत्य होगा और उस दिन दोनों देशों में कौन जिये और कौन मरे यह भी निश्चय हो जायगा। बिस्मार्क ने इस आने वाले खतरे से दो प्रकार के बचाव सोचे हुए थे। पहला बचाव जर्मनीकी तय्यारी थी। जिस देश में अपनी शक्ति नहीं, उसे मित्रदेशों की सारी शक्ति भी नहीं बचा सकती। उस देश को प्रबल शत्रु के दण्ड के सामने झुकना ही पड़ेगा। बिस्मार्क ने अपनी सेना में कोई कमी नहीं आने दी, प्रत्युत वह प्रतिदिन उसकी कार्यक्षमता को बढ़ाने की ओर ध्यान देता रहा। साथ ही उसने रूस के साथ प्रीति के सम्बन्ध स्थापित किये। १८७० का युद्ध होने से पूर्व भी रूस के साथ प्रशिया के सम्बन्ध अच्छे थे। बिस्मार्क ने उन्हें यथाशक्ति हटने नहीं दिया। उधर आस्ट्रिया के साथ भी उसने खूब बना रखी थी। यह उस की नीति की पहली पीठिका थी।

१८७८ में अवस्थाओं में परिवर्तन आगया। जर्मनी की दिन दिन उन्नति देख कर रूस के मन में खटका होने लगा। विशेषतया बर्लिन की कांग्रेस में रूस को बिस्मार्क से बहुत शिकायत होगई थी। रूस चाहता था कि वह किसी प्रकार कुस्तुन्तुनिया पहुंचे, इस कार्य में वह बिस्मार्क की सहायता चाहता था उस से वैसी सहायता न पाकर रूस नाराज़ होगया। उसका प्रेमसूत्र जर्मनी को पार करके फ्रांस के साथ बंधने लगा। बिस्मार्क ने ताड़ लिया कि इस मेल का तात्पर्य क्या है? अपनी कामनाओं की पूर्ति में जर्मनी का सहारा न पाकर रूस फ्रांस की ओर हाथ पसारने लगा। बिस्मार्क भी सो नहीं रहा था। उसने इस मेल का सामना करने के लिये एक नया मेल खड़ा किया, जो त्रितय मेल के नाम से प्रसिद्ध है। यह त्रितय मेल जर्मनी आस्ट्रिया और इटली में हुआ था।

इस मेल का मुख्य उद्देश्य यह था कि यदि फ्रांस और रूस मिल कर आक्रमण करें, तो जर्मनी अपने मित्रों से सहायता पा सके। मेल की शर्तें यह थी कि यदि जर्मनी या आस्ट्रिया पर रूस आक्रमण करे तो दूसरी शक्ति अपने मित्र को सहायता देगी; यदि दोनों में से किसी पर फ्रांस आक्रमण करे तो दूसरी शक्ति उदासीन रहेगी। यदि रूस और फ्रांस मिलकर आक्रमण करेंगे तो आस्ट्रिया और जर्मनी इकट्ठे लड़ेंगे। इटली भी इस मेल में शामिल होगया। रूस के साथ मैत्री रखने से जर्मनी को पहले जो लाभ था, वह उसे अब इस नये मेल से प्राप्त होगया। १८७८ से आगे ३५ वर्षों का योरप का इतिहास इसी मेल और इसके उत्तर भूत इंग्लैण्ड फ्रांस और रूस के मेल के संघर्ष का इतिहास है।

घर में भी बिस्मार्क को शान्ति से नहीं बैठना मिला। उसे विशेष युद्ध समष्टिवादी दल के साथ करना पड़ा। बहुत पहले ही यह समष्टिवादी दल पैदा होगया था। विद्यमान शासन को यह दल हानिकारक समझता था और राजसत्ता का विशेषतया विरोधी था। मजदूरों और निर्धन व्यक्तियों की ओर इस दल का विशेष ध्यान था। बिस्मार्क को समष्टिवादियों के कार्यप्रवाह के साथ कोई सहानुभूति नहीं थी। वह उन्हें समाज के राजमार्ग में रोड़े के समान

समझता था। उन्हें दबाने के लिये बिस्मार्क ने कई यत्न किये। जोशीले समष्टिवादियों की मूर्खता ने उसे अपने रोष को कार्यमय करने का अवसर भी देदिया। दो युवाओं ने थोड़े २ दिनों के अन्तर पर ही सम्राट् विलियम पर गोली-प्रहार किया। अज्ञानी मित्र ज्ञानी शत्रु की अपेक्षा कहीं भयानक होता है। समष्टिवाद के अति-सेवकों ने उसके विरोधी के हाथों में हथियार दे दिया। बिस्मार्क ने प्रतिनिधि-सभा से कई ऐसे राजनियम बनवाये, जिन द्वारा इस बढ़ते हुए दल को दबाया जासके। नियम कठोर थे और उन्हें बड़ी कठोरता से कार्य में लाया गया। बिस्मार्क ने अपनी ओर से पूरा ज़ोर लगाया किन्तु जो सभा या समाज किसी सत्य सिद्धान्त पर स्थिर है, उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। इतिहास ने यदि कोई एक परिणाम संसार को सिखाया है तो वह यह है कि राजनियम का बल प्रजा की स्वाधीन इच्छा के बल से कहीं कम है। बिस्मार्क के सारे यत्न समष्टिवादरूपी भट्टी में घृत की आहुतियों के समान ही हुए। समष्टिवाद बढ़ता ही गया और आज जर्मनी के सब राजनीतिक दलों में अधिक प्रबल यही है।

हमारे पास स्थान नहीं है, और न इस पुस्तक का उद्देश्य ही है, कि उस सारे शासन का वर्णन होसके जो बिस्मार्क ने देशहित के लिये किया। उन आर्थिक सुधारों का, जिन्होंने आज जर्मनी के कलाकौशल को इतनी उन्नत दशा में कर दिया है, बीज बिस्मार्क ने ही बोया था। वह जर्मनी का पिता था; पिता की भांती ही उसने देश का बीस साल तक पालन-पोषण किया। कभी २ उसे शासन में बड़ी कठिनाई होती थी। प्रतिनिधिसभायें उसके मार्ग में रुकावट डालती थीं। वह उन मनुष्यों में से नहीं था, जो रुकावट को सह सके। वह प्रायः सभा से बहुत नाराज़ होजाता था, किन्तु कार्य हो ही जाता था। जो कुछ वह चाहता था, पा ही लेता था।

ज्यों २ समय बीतने लगा, जर्मनी की नई सन्तति के हृदयों में देश के निर्माता के लिये श्रद्धा अधिकाधिक होने लगी। बिस्मार्क लोगों के लिये पूजनीय मूर्त्ति के समान होने लगा। १८८२ में उसने अपनी ७० वीं वर्षगांठ धूम धाम से मनाई। उस दिन सारे देश में महोत्सव मनाया गया। कृतज्ञ जर्मनवासियों

ने अपने भाव को प्रकाशित करने के लिये चन्दा इकट्ठा किया, और बीस लाख मार्क एकत्र करके उसकी भेंट किये। जाति की प्रेम–भेंट को बिस्मार्क ने सिर झुका कर स्वीकार किया। उसने राशि के कुछ भाग से अपनी पुरानी शौन-हौज़न की जागीर ख़रीद ली और शेष धन विद्यालयों के लिये अध्यापक तय्यार करने के उपयोगी एक शिक्षणालय बनाने में लगाया। कृतज्ञ प्रजा का धन स्वीकार करके बिस्मार्क ने अपनी प्रणयि वत्सलता को प्रकाशित किया और उसके बड़े भाग को प्रजार्थ ही व्यय करके अपनी महानुभावता का परिचय दिया।

१८८८ की ८वीं मार्च के दिन सम्राट् विलियम का देहान्त होगया। वह लग भग ९१ वर्ष का था, जब उसका देहान्त हुआ। जब हम विलियम और बिस्मार्क के नामों को याद करते हैं, तो हमारे चित्त में चन्द्रगुप्त और चाणक्य का स्मरण अवश्य हो आता है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य की भांति उन्होंने इकट्ठी आपत्तियों को सहा, इकट्ठी ही ऐसी भयानक यात्रा की जिस में भूला हुआ एक भी कदम, चलने वाले को मृत्युकूप में डालने के लिये पर्याप्त था। धैर्य और पराक्रम से दोनों साथ २ आकाश में उठे और उठते गये, जब तक संसारपर्वत की उच्चतम चोटी पर नहीं बैठ गये। ये दोनों आत्मा जर्मनी के लिये प्राणदाता सिद्ध हुए। दोनों का एक दूसरे के साथ जो प्रेम था वह भी अगाध था। विलियम के प्रति बिस्मार्क की जो भक्ति थी उसका वर्णन कई स्थानों पर आ चुका है। विलियम को बिस्मार्क के लिये जो प्रेम था, उसका एक ही उदाहरण बस होगा। १८७७ में स्वास्थ्य बिगड़ जाने से और कई राजकीय धन्धों से घबरा कर बिस्मार्क ने सचिवपद से अपना त्यागपत्र दे दिया। कैसर ने उसके एक किनारे पर 'कभी नहीं' लिख कर लौटा दिया।

सच्चा उदार और वीर विलियम उठ गया—बिस्मार्क जिस लकड़ी के सहारे खड़ा था वह गिर गई। उसके पीछे उसका पुत्र फ्रेडरिक सम्राट् हुआ, फ्रेडरिक बड़ा उदार और बुद्धिमान् शासक था। प्रजा को उस से बहुत बड़ी २ आशायें थीं। बिस्मार्क के साथ उस के सम्बन्ध अनुकूल थे। किन्तु दैव ने उसे जर्मनी का शासक अधिक देर तक न रहने दिया। केवल ९० दिनों तक गद्दी पर बैठ कर ही उसका देहान्त हो गया। इतने दिनों तक भी वह बीमार ही रहा।

फ्रेडरिक के पीछे युवराज विलियम 'दूसरा विलियम' इस नाम से सम्राट् के आसन पर आरूढ़ हुआ। इस राज्यारोह के साथ जर्मनी के जीवन में एक नया युग प्रारम्भ होता है और साथ ही विस्मार्क के जीवन नाटक के भी अन्तिम अंक का पर्दा उठता है।

दूसरा परिच्छेद ।

पटाक्षेप ।

नया सम्राट् नवयुवक था । वह जर्मनी की उस सन्तति में से था जो विस्मार्क को देश का पिता समझती थी । उसने बिस्मार्क से ही राजनीति का क. ख. पढ़ा था । इन कारणों से प्रधान सचिव में नये कैसर की बहुत श्रद्धा थी । दूसरी ओर वह दृढ़ इच्छाशक्ति वाला, आत्मविश्वासी और प्रौढ़ था । विस्मार्क ने जर्मनी के सम्राट् को प्रजा की दृष्टि में ईश्वर का दूत प्रसिद्ध किया था, और राजा के ईश्वरीय अधिकारों का पक्षसमर्थन किया था । नये कैसर के अन्तर्हृदय में ये विचार कूट कूट कर भरे हुए थे । उसने बिस्मार्क से ही सुन रखा था कि राजा की इच्छाशक्ति देश में सब इच्छाशक्तियों से ऊपर होनी चाहिये । उसे अपने ऊपर बहुत भरोसा था । उसकी निरन्तर क्रियाशक्ति और बढ़ी हुई इच्छायें इस बात की सूचिका थीं कि राजा और मन्त्री का यह नया मेल ठीक नहीं मिलेगा । मिलेगा या नहीं, लोग यह भी सन्देह करते थे ।

उस समय जर्मनी की जो शासनप्रणाली थी, उसमें प्रधानसचिव ही सब कुछ था । राजा केवल प्रधान सचिव को सहारा देने वाली शक्ति थी । प्रधान मन्त्री उसी के भरोसे खड़ा होकर सारा काम किया करता था, किंतु उसे कुछ स्वतन्त्र कार्य करने का अधिकार नहीं था । ऐसा होने में कुछ तो विस्मार्क का असाधारण व्यक्तित्व कारण था, जिसके गौरव की छाया के सामने कैसर की जोत मध्यम पड़ जाती थी । कुछ विस्मार्क की तय्यार की हुई राज्यसंस्था भी कारण थी । उस संस्था में सम्राट् केवल नाममात्र का प्रधान पुरुष रह गया था । सिवा प्रधान सचिव के और किसी सचिव या राजकर्मचारी के साथ वह सीधा व्यवहार नहीं कर सकता था । प्रधानसचिव के हाथ में ही कैसर की सब इच्छायें रहती थीं । जो लोग नये सम्राट् के शाही स्वभाव को जानते थे, वे सन्देह करते थे, कि विस्मार्क की प्रधानता देरतक चलेगी या नहीं । पहला विलियम सरल योद्धा था, उसे काबू में रखना सहज था । फ्रेडरिक केवल तीन मास तक ही सम्राट् रहा और इतने दिनों

तक भी बीमार रहा। न जाने वह कसी हुई लगामों को कहां तक सह सकता। दूसरा विलियम अभी युवा था—उसका सारा जीवन सामने पड़ा था। क्या वह भी बिस्मार्क के अंगूठे के नीचे रहेगा? क्या वह भी गुरु बिस्मार्क का भक्त शिष्य रहेगा? जानकार लोगों में इस बात पर खूब चर्चा होने लगी।

बिस्मार्क इस समय सफलयत्न हो चुका था। उसने जर्मनी को फिर से उत्पन्न किया, और नये बच्चे को लगभग बीस वर्ष तक पाला। इतना बड़ा काम संसार में कितने महापुरुषों ने किया है? जिन्होंने संसार की काया में इतना फलगर्भ परिवर्तन किया हो, ऐसे व्यक्ति सारे इतिहास में इने गिने हैं। अब और कौनसी सांसारिक इच्छा थी, जो अपूर्ण रह गई थी। बिस्मार्क की उस समय योरप में अनूठी स्थिति थी। उसकी एक एक चेष्टा को सारा योरप आकांक्षाभरी आंखों से देखता था। उसके भाषण के एक २ शब्द पर अन्य देशों के राजनीतिज्ञ रातों विचार करते थे। उसकी एक अँगुली हिलने पर जर्मनी के लाखों बांकेवीर साज़समेत हिल सकते थे। सारा योरप देख रहा था कि अंगुली किधर हिलती है। जर्मनी में वही वह था। प्रजा उसे पूजती थी, प्रतिनिधिसभा की आवाज़ उसकी गति पर प्रभाव नहीं डाल सकती थी, राजनीतिज्ञ उस के शिष्य ही थे, और सम्राट् का प्रभाव भी उस के तेजस्वी प्रभाव के सम्मुख मन्द पड़ जाता था। ऐसा बिस्मार्क था, जिसके आधिपत्य में आधिपत्य करने के लिये दूसरा विलियम राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ।

पहले से ही यह स्पष्ट होगया कि नया सम्राट् प्रधान सचिव की बेड़ियों में रहना पसन्द नहीं करेगा। बिस्मार्क, राजारूपी मूर्ति को बर्लिनमन्दिर में स्थापित करके राज्य करना चाहता था, दूसरे विलियम का आत्मविश्वासी जोशीला स्वभाव इस कारागारवास के विरुद्ध विद्रोही हुआ जाता था। नये कैसर ने पहले से ही स्थान २ पर घूमना प्रारम्भ किया। बिस्मार्क ने इस स्वच्छन्दता को पसन्द नहीं किया। वह समझता था कि इधर उधर घूमने से सम्राट् के गौरव में बड़ा धक्का लगता है। राजा और मन्त्री में संघर्ष का यह पहला कारण हुआ।

शीघ्र ही दूसरा कारण भी उपस्थित होगया। हम पहले लिख चुके हैं कि बिस्मार्क को समष्टिवाद के साथ विशेष युद्ध करना पड़ता था। उसे कई राजनियम

बनाने पड़े थे, जिन द्वारा समष्टिवादियों की सभाओं के मुंह बन्द किये गये और समाचार-पत्रों के कार्यालयों में ताले लगा दिये गये। वे नियम जितने समय के लिये स्वीकृत हुए थे, वह समाप्त हो चला। बिस्मार्क चाहता था कि वे नियम फिर से स्वीकृत किये जायं, और समष्टिवादियों को उन्मूलित करने के यत्न को शिथिल न किया जाय। कैसर विलियम को बिस्मार्क का यह विचार ठीक नहीं जंचा। उसने अपनी जो सम्मति प्रकट की, उससे प्रजाको ज्ञात होगया कि कैसर समष्टिवाद का इलाज सुधार को समझता है, न कि अत्याचार को। उसने कहा कि हम उन शिकायतों को दूर करेंगे, जिन्हें सुना २ कर समष्टिवाद जीता है। साथ ही उसने यह भी स्पष्ट रीति से कह दिया था कि वह बर्लिन में योरप भर के राजनीतिज्ञों की सभा बुलायगा, जो समष्टिवाद के प्रश्न पर विचार करेगी। बिस्मार्क इन नये ढंग के विचारों से बहुत क्षुब्ध हुआ। यह उसके लिये स्वाभाविक था। जो मनुष्य बीस साल तक शासन करने में सर्वथा स्वाधीन रहा हो, उसके विरुद्ध एक शब्द उठे तो सहन करना कठिन होजाता है—और फिर शब्द भी ऐसे स्थान से उठे, जहां से वह 'जी हां' की पूरी आशा रखता हो।

बिस्मार्क ने समष्टिवादियों के विरोधी नियम राजसभा में पेश किये। सभा ने उन्हें स्वीकार नहीं किया। उस सभा को विसर्जित किया गया, और नये प्रतिनिधियों का चुनाव होने लगा। कैसर की सम्मति लोगों को ज्ञात ही थी, इसलिये चुनाव भी वैसा ही हुआ। नये प्रतिनिधियों की सभा में वे नियम पेश किये गये और फिर अस्वीकृत हुए। बिस्मार्क के प्रभाव को इस घटना से कितना धक्का मिला, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानों उसके सिर पर से कोई मनुष्य सचिवमुकुट उठा कर ले जा रहा है।

थोड़े ही दिनों में संघर्ष यौवन को प्राप्त होगया। जर्मन साम्राज्य के उस संगठन में, जो साम्राज्य की स्थापना के समय बना था, सारे राजमन्त्रियों का मुखिया प्रधान सचिव को माना गया था। सम्राट् स्वयं अन्य मन्त्रियों से कोई सलाह नहीं ले सकता था, उसकी दृष्टि में प्रधान सचिव ही एक मन्त्री था। वह राजकीय विषयों में उसी से बात चीत कर सकता था। अन्य मन्त्री प्रधान सचिव के ही अधीन माने जाते थे। विलियम ने इस नियम पर विशेष ध्यान

न दे कर स्वयं अन्य मन्त्रियों से सलाहें लेनी प्रारम्भ करदीं। बिस्मार्क को यह बहुत अखरा। उसने कैसर के पास जाकर अपनी शिकायत सुनाई। कैसर ने बलपूर्वक उत्तर दिया कि वह जर्मनी का सम्राट् है और सम्राट् पर ऐसा कोई बन्धन नहीं लग सकता। सब मन्त्री उसके अधीन हैं, वह जिससे चाहेगा सलाह लेगा। बिस्मार्क ने इसमें तरह २ की आशंकायें उठाईं और विशेषतया राज्यसंगठन का हवाला दिया। कैसर ने उत्तर में कहा कि यदि जर्मनी के राज्यसंगठन में ऐसा ही कोई रद्दी नियम है तो उसे बदला जायगा, और बिस्मार्क को ही आज्ञा दी कि वह उस नियम का परिवर्तन करने के लिये एक प्रस्ताव बनाय, और राज-सभा में पेश करे। बिस्मार्क का नियम में ऐसा परिवर्तन करना अपने पांव में स्वयं कुल्हाड़ी मारने के समान था। उसने इन्कार कर दिया। कैसर ने अन्त में जोश में आकर यहां तक कह दिया कि 'मेरी इच्छा अवश्य पूरी होगी, यदि तुम उसे पूरा नहीं करोगे, तो कोई और करेगा।' ये शब्द बिस्मार्क के लिये पर्याप्त थे। उसने पूछा कि 'तब क्या मैं यह समझूं कि मैं श्रीमानों के मार्ग में रुकावट डाल रहा हूं?' विलियम का उत्तर था 'हां'।

वज्र से आहत महावृक्ष की न्याईं विचलित होकर बिस्मार्क उस स्थान से उठ गया, और मन्त्रिपद से अपना त्यागपत्र तय्यार करने लगा। विलियम भी नाबालिग और पराधीन राजा की हैसियत से निकल कर स्वच्छन्द सम्राट् बनने के लिये उतावला हो उठा। त्यागपत्र के आने में देर होते देख कर उसने फिर एक बार बिस्मार्क को जल्दी करने के लिये कहला भेजा। बिस्मार्क का त्यागपत्र आगया और स्वीकृत होगया। बिस्मार्क के शब्दों में दूसरा विलियम स्वयम् ही अपना प्रधान सचिव बन गया।

नहीं कह सकते, इस दुःखान्तनाटक में कौन दोषी था। यह दुःखान्तनाटक था, इसमें कोई सन्देह नहीं। जब बिस्मार्क कार्यक्षेत्र में आया था, प्रशिया का राज्य घृणित लोहे के टुकड़े के समान था। उसका कार्यक्षेत्र में आना पारस पत्थर के समान हुआ। आज प्रशिया के राजा के सिर पर उज्ज्वलतम सोने का साम्राज्यसूचक मुकुट विद्यमान है। यदि कोई म-नुष्य नये जर्मन साम्राज्य के विषय में ममता कर सकता है, तो वह बिस्मार्क

शक्ति का प्रयोग दैनिक भोजन के समान आवश्यक होगया था। जब शक्ति छिन गई, वह अपने आपको जगत् में निरवलम्ब अनुभव करने लगा।

बिस्मार्क उन व्यक्तियों में से नहीं था, जो अपने मुंह पर भय या लिहाज़ से ताला लगा सकें। जो उसके विचार होते थे, उनका प्रकाश वचन द्वारा हो ही जाता था। नये सम्राट् के लिये बिस्मार्क का निवासस्थान विरोध का अड्डा होगया, हरएक मिलने वाले के सम्मुख बिस्मार्क विलियम की अकृतज्ञता की कहानी सुनाने लगा, उससे मिलने वालों की संख्या कम नहीं थी। उसका घर योरप भर के राजनीतिज्ञों और शिक्षित व्यक्तियों के लिये तीर्थस्थान बन गया था। दूर २ देशों से भक्तों की टोलियां योरप के मुख्य राजनीतिज्ञ के दर्शन करने के लिये आने लगीं। बिस्मार्क भी हर एक के सम्मुख अपनी शिकायतों की पिटारी खोल देता था। इसी रोष और जोश में बिस्मार्क की वह राजभक्ति, जिस के नाम पर उस ने जीवन की सफलतायें प्राप्त की थीं, काफूर हो गई। वह राजघराने के विषय में राजद्रोह भरी बातें भी कह डालता था। "ये होहिन् ज़ालर्न लोग कौन ह ? क्या हमारा वंश इनकी अपेक्षा प्रशिया में पुराना नहीं है ? इस प्रकार के शब्द सुन कर लोग चकित होते थे, क्योंकि जाति को राजा के प्रति अटूट भक्ति रखने का उपदेश जितना बिस्मार्क ने दिया था, उतना और किसी ने नहीं दिया होगा।

यह विरोध केवल व्यक्तिगत मामलों तक ही परिमित नहीं रहा। बिस्मार्क को कैसर विलियम का हर एक राजनीतिक कार्य बुरा जंचने लगा। उसे प्रतीत होता था कि उस के उत्तराधिकारी मन्त्री उस की कमाई हुई राजशक्ति को नष्ट कर रहे हैं। नये शासनकर्ताओं की कोई भी चाल उसे पसन्द नहीं आती थी। एक समाचारपत्र को उसने अपनी सम्मतियों का प्रकाश करने के लिये चुन लिया, और आये दिन उस में चलते हुए शासन की कठोर समालोचना होने लगी। वह समालोचना कैसर और उस के मन्त्रियों के लिये बड़ी दुखदायिनी थी। बिस्मार्क राज्य के एक एक पुर्ज़े का जानकार था, उसे गुप्त से गुप्त सन्धियों का पता था, क्योंकि वह स्वयं उनका करने वाला था। इतने जानकार की की हुई समालोचना किसी भी शासकमण्डल की धज्जियां उड़ा के देने लिये पर्याप्त हो सकती है।

विस्मार्क के जीवन के इस भाग का इतिहास पढ़ कर मनुष्य यह चाहे विना नहीं रह सकता कि यदि मन्त्रिपद से जुदा होते ही कोई दैवी शक्ति उसे भूतल पर से लेजाती, तो जर्मनी और विस्मार्क दोनों के लिये भला होता.। उसके अन्तिम जीवन भाग ने किसी को भी लाभ नहीं पहुंचाया। शक्तिशाली असन्तुष्ट आत्माओं के रोगने उसे आघेरा और उसके स्वभाव के बुरे से बुरे भागों को जगा दिया। राज्य का चालन करते हुए जो कार्य उसने स्वयं किये थे और प्रजा को विश्वास दिलाया था कि सत्य उसकी ओर है, बदले के जोश में आकर वह उन्हीं के रहस्य खोलने लगा। जिस तारसमाचार को बिगाड़ कर उसने १८७० में फ्रांस को युद्ध प्रारम्भ करने के लिये बाधित किया था,उस की कहानी स्वयं विस्मार्क ने ही लोगों को सुनानी शुरू की। वह प्राय: कहने लगा कि राजा के तार का बदलना, पत्रों में भेजना और फ्रांसी लोगोंको युद्धके लिये उभारना क्या मैंने इसीलिये किया था कि मुझे आज का दिन देखना पड़े। जो लोग १८७० के युद्ध में सारा फ्रांस का ही अपराध समझते थे, उन्हें स्वयं युद्ध करने वाले व्यक्ति से पता लग गया कि अपराधी वह था। ये दृश्य किसी के लिये भी प्रसन्नतादायक नहीं थे।

विस्मार्क के भी जीवननाटक का अन्त हो रहा था। धीरे धीरे वह संसार में अकेला होने लगा। वे रून आदि मित्र, जो सुखदु:ख के साथी थे संसार से उठ गये। उसकी सहधर्मिणी का देहान्त होगया। वह अपने आपको अकेला समझने लगा। क्रियात्मक जीवन व्यतीत करते करते उस के अन्दर यह शक्ति ही नहीं रही थी कि वह शान्तिपूर्वक पढ़ लिख कर खेती के कार्य का दैवी आनन्द लेता हुआ जीवन के अन्तिम भाग को व्यतीत करता। असन्तोष और खेद ने उस के चित्त पर अपना अधिकार जमा लिया था। उसने आत्मचरित लिखना प्रारम्भ किया था, वह भी बड़ी कठिनता से पूरा हो सका।

इन सब बातों के रहते हुए भी उसकी बुद्धि उतनी ही क्रियाशीला थी जितनी यौवनावस्था में। अन्तिम दिन तक जर्मनी और योरप की राजनीति की चालों का वह बड़े ध्यान से अनुशीलन करता रहा। कोई बड़ी राजनीतिक घटना उसकी दृष्टि से नहीं बचती थी। वह शक्ति इस समय शान्तिदायक नहीं

प्रत्युत असन्तोष का हेतु होरही थी। परमात्मा को इतनी महती आत्मशक्ति को अधिक क्लेश देना अभीष्ट नहीं था। १८९८ के जुलाई मास के अन्तिम दिन उस पर पुराने भयानक रोग ने आक्रमण किया। उसी रोग से जर्मनी के योग्यतम पुत्र की देहलीला का संवरण हुआ।



तीसरा परिच्छेद ।

किं बहुना ।

बिस्मार्क का नाम संसार के महापुरुषों की श्रेणी में लिखा जा चुका है, अब कोई उसे वहां से मेट नहीं सकता । महापुरुष उस पुरुष को कहा जाता है, जो कोई बड़ा काम करजाय । लेखकों और कवियों ने अपनी कल्पनाशक्ति के सम्पूर्ण पंख फैला कर महापुरुष शब्द की व्याख्या करने का यत्न किया है । किसी ने एक व्याख्या की है और किसी ने दूसरी । किसी ने आत्मिक बल को प्रधान रक्खा है, और किसी ने लौकिक शक्ति को । किसी को भी इस कार्य में सफलता प्राप्त हुई, इस में सन्देह है । धीरे धीरे सब विचारक इस विचार पर आ रहे हैं कि संसार में महापुरुष वह कहाता है जो कोई बड़ा काम कर जाय । इस सीधे से लक्षण के अनुसार बिस्मार्क निश्चय से महापुरुष था । इतिहासने ऊर्ध्वबाहु होकर दृढ़ता से उसके महापुरुष होने की घोषणा देदी है । बिस्मार्क का नाम चाणक्य समुद्रगुप्त फ्रेडरिक दि ग्रेट और कैवूर आदि साम्राज्यनिर्माताओं की श्रेणी में निःसन्देह आचुका है । यह ठीक है कि वह फ्रेडरिक दि ग्रेट की भांती राजा नहीं था, और न वह समुद्रगुप्त की भांती सहस्रों सेनाओं का स्वामी था । किन्तु क्या यही एक बात बिस्मार्क को फ्रेडरिक दि ग्रेट से ऊंचे आसन पर नहीं बिठा देती । सेना उसके काबू नहीं थी, किन्तु वे लोग उस के काबू में थे, जो लाखों सेनाओं के स्वामी थे । वह राजा नहीं था, किन्तु वह उन लोगों का बनाने बिगाड़ने वाला था, जो पीढ़ियों से राज्य करते आये थे यह सब कुछ उसने किया और सिंहासनारूढ़ नरपति न होते हुए किया । इसी-लिये महापुरुषों की श्रेणी में बिस्मार्क का स्थान बहुत ऊंचा था ।

सिकन्दर और नैपोलियन महापुरुष कहे जाते हैं, किंतु उनका महत्त्व [illegible] था, निर्माण की ओर नहीं । बिस्मार्क का महत्त्व निर्माण की ओर [illegible]र मरा, उसका जीता हुआ साम्राज्य गिरने के लिये डोल रहा [illegible] [illegible]का साम्राज्य उस की मृत्यु से पहले ही मर गया था । किन्तु

साम्राज्य जो बिस्मार्क के यत्न से स्थापित हुआ, आज भी संसार को अचम्भे में डाल रहा है। जर्मनसाम्राज्य के निर्माण में मौल्के, रून और विलियम ने जो कार्य किया उसे कोई भुला नहीं सकता किंतु उनके कार्य केवल सहायक थे। बिस्मार्क की ही इच्छाशक्ति थी, जिसने अनेक प्रकार की सम्मतियां रखने वाले व्यक्तियों को अभीष्ट कार्य की सिद्धि में लगा दिया। जर्मनसाम्राज्य के निर्माण कार्य में प्राण डालने वाली शक्ति बिस्मार्क की मानसिक शक्ति ही थी।

यदि कार्य से कारण का कुछ भी अनुमान होसकता है, तो जर्मनसाम्राज्य की वर्तमान दशा से बिस्मार्क के शील स्वभाव का ख़ूब परिचय मिल सकता है। उसकी नीति उसकी दृढ़ता और उसकी प्रतिदिन बढ़ने की इच्छा जर्मनसाम्राज्य की अवस्था में स्पष्टतया झलक रही है। यदि आज जर्मनसाम्राज्य की नीति में सरल सत्य की मात्रा कम दीखती है तो उसका उत्तरदातृत्व भी बिस्मार्क के कन्धों पर ही है। 'लहू और लोहे' की नीति का उपदेश करके १९१४ के महायुद्ध की बुनियाद डालने वाला बिस्मार्क ही था। जो मनुष्य एक जाति पर अपना इतना गहरा प्रभाव डाल सकता है, उस के महान् होने में सन्देह नहीं। यदि बिस्मार्क को महान् बिस्मार्क नहीं कहा गया तो उसका कारण यही है कि जन-साधारण की दृष्टि में कार्य की अपेक्षा नाम की अधिक प्रतिष्ठा है। जो मनुष्य 'राजा' के नाम से पुकारा जाय वही महान् हो सकता है अन्य नहीं हो सकता। यदि लोगों ने ऐसा कुनियम न बना रखा होता तो आज हमारे इस ग्रन्थ का नाम 'महान् बिस्मार्क का-जीवन-चरित' होता।